मंजरी

स्त्री के मन की

जनवरी 2017

अंक–11

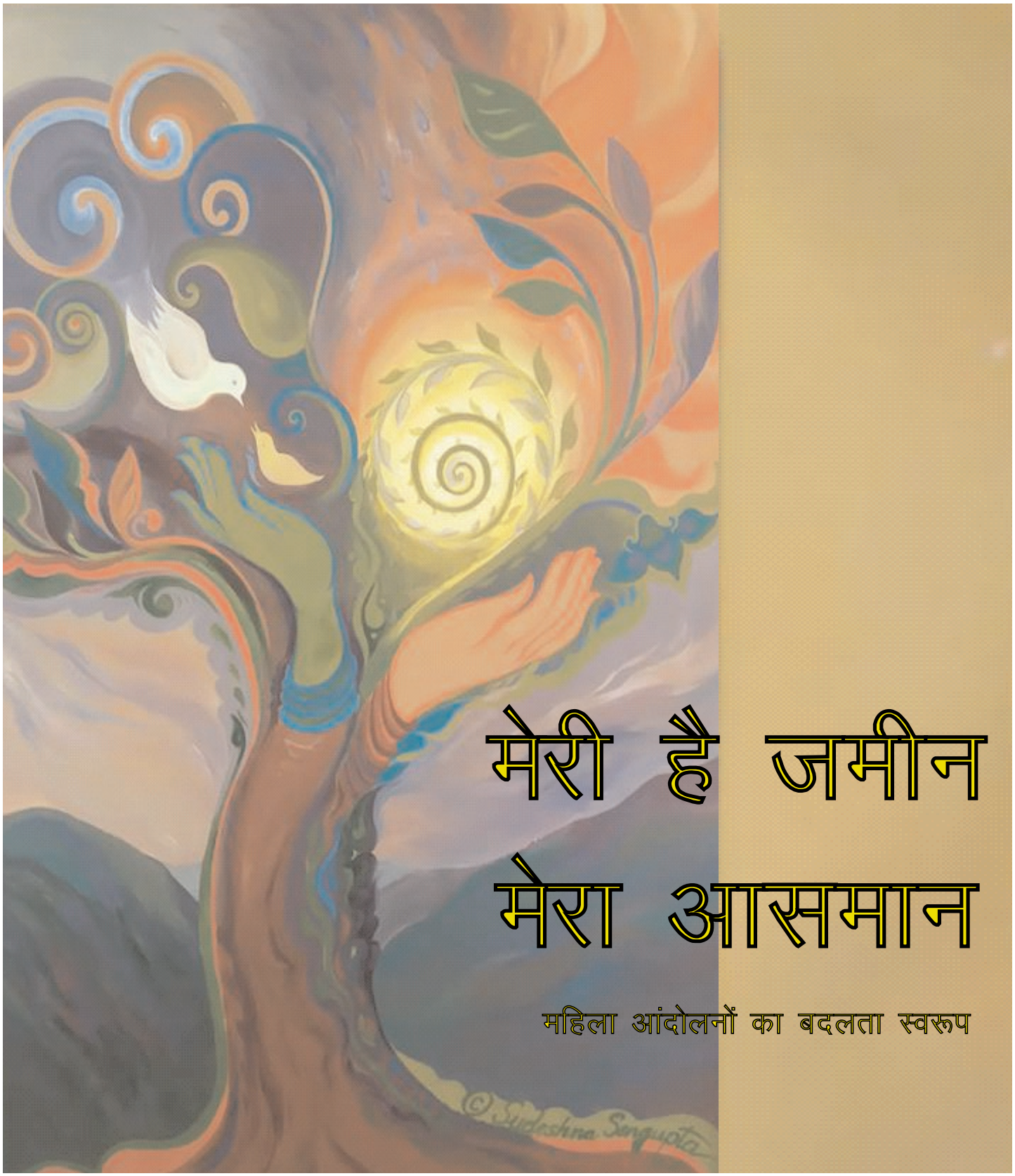

मेरी है जमीन मेरा आसमान

महिला आंदोलनों का बदलता स्वरूप

Sulabh Sanitation Movement

Sulabh International
Social Service Organisation

दूध से हमने किया तैयार
हंसता-खेलता बिहार

सुधा
श्वेत समृद्धि

COMFED
बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.
E-mail : comfed.patna@gmail.com, www.sudha.coop

सुधा
का नया UHT एलेकस्टर दूध पैक, बिना फ्रिजिंग
रहे अब 90 दिन तक, शुद्ध और ताजा

नजदीकी सुधा बूथ पर उपलब्ध

COMFED बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि. www.sudha.coop

Sudha
An alliance
with healthy life

Bihar/Jharkhand's No.1 Dairy brand
Sudha
सेहत, स्वाद, अनगिनत खुशियाँ

COMFED BIHAR STATE MILK CO-OPERATIVE FEDERATION LTD.
E-mail: comfed.patna@gmail.com, Website: www.sudha.coop

SHAHAD

ये दूध नही दम है,
पियो जितना कम है।

Sudha
सेहत,स्वाद,अनगिनत खुशियाँ

Best Brand Best Milk

COMFED बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.
E-mail : comfed.patna@gmail.com www.sudha.coop

COMFED बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.

takshila
connect
to the
universe

उत्कृष्टता, आनंद और सफलता का उत्सव

हम आज जिस मुकाम पर हैं उसका सारा श्रेय हमारी कर्मठ श्रमशक्ति को जाता है। सतत विकास के माध्यम से उत्कृष्टता की खोज करने में नवाचार और प्रतियोगिता के क्षेत्र में हमारे सार्वजनिक क्षेत्रोपक्रम ही हमें दूसरों से आगे रहने में सहायता पहुंचाते हैं। आज पावरग्रिड के पास पारेषण क्षेत्र और ग्रिड प्रबंधन में सर्वश्रेष्ठ प्रतिभावान लोग कार्यरत हैं। हम गौरवशाली powergridians, ऊर्जा के पारेषण द्वारा लाखों लोगों के जीवन को सशक्त बनाते हैं। आइए, उत्कृष्टता और आनंद के साथ, वैश्विक स्तर पर पारेषण के क्षेत्र में अग्रणी बनने और अधिक से अधिक ऊर्जा के साथ भारत की सेवा करने हेतु हम, ***powergridians* सदैव प्रतिबद्ध हैं।**

पावरग्रिड नेटवर्क, संक्षेप में

- विद्युत पारेषण के माध्यम से राष्ट्र को जोड़ना
- भारत की प्रमुख विद्युतीय ऊर्जा पारेषण कंपनी
- वैश्विक स्तर पर पाँचवीं सबसे तेज प्रगतिशील विद्युत कंपनी
- भारत के अंतर्राज्यीय और अंतर-क्षेत्रीय विद्युत पारेषण प्रणाली के 90% से अधिक का स्वामित्व और संचालन
- 1994 के बाद से प्रदर्शन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भारत सरकार द्वारा "उत्कृष्ट" रैंकिंग प्रदान की गई
- पावरग्रिड की पारेषण प्रणाली की उपलब्धता 99% से अधिक
- देश में उत्पन्न बिजली की 46% से अधिक का पारेषण पावरग्रिड के नेटवर्क द्वारा

पावरग्रिड

एक 'नवरत्न' कंपनी

एक राष्ट्र ग्रिड फ्रीक्वेन्सी

पंजीकृत कार्यालय: बी-9, कुतुब इंस्टीटयूशनल एरिया, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016 फोन नं: 011-26560122, फैक्स: 011-26601081
कॉर्पोरेट कार्यालय: सौदामिनी, प्लॉट नं. 2, सेक्टर-29, गुड़गांव, हरियाणा-122 001 (भारत) फोन नं: 0124-2571700-719, फैक्स: 0124-2571762,
ई मेल आईडी: powergrid@powergrid.co.in, सीआईएन: L40101DL1989GOI038121, www.powergridindia.com

संकल्पना

संकल्पना

इक्विटी फाउंडेशन लंबे अरसे से एक वेब पत्रिका शुरू करने के बारे में सोच रहा था। मकसद था महिला और समाज के मुद्दों को शिद्दत से उठाना। जब हमने चीजों को एक साथ कर उसे पत्रिका के रूप में सजाने के बारे में सोचना शुरू किया तो इस क्रम में कई लोगों से जुड़े। हमने महिलाओं को पत्रिका से जोड़ने की कोशिश की। हम दोस्तों से मिले और परिचितों से बात की। महिलाओं के सामाजिक समूहों और शिक्षाविदों के एक साथ जुड़ने के बाद जो स्वरूप सामने आया वह है 'मंजरी'।

मंजरी यानी कोंपल। शाखों में फूटने वाली नन्ही पत्तियां। नई शाखों का सृजन करने वाले इन कोंपल को कुम्हलाने से बचाना जरूरी है नहीं तो पूरे पेड़ का विस्तार कुंद हो जाएगा। ठीक उसी तरह स्त्री के मन की मंजरी को सहेजने की जरूरत है वरना पेड़रूपी समाज विकृति का शिकार हो जाएगा। हमारा प्रयास इसी मंजरी को पुष्पित पल्लिवत करने का है जो औरत की सोच और उसकी कोशिश को सही दिशा प्रदान कर सके।

मंजरी के सृजन के दौरान पहले तो 10–30 लोगों का एक ढीला–ढाला समूह बना। विचार आते गए। अलग–अलग विषयों और मुद्दों पर। समूह में कुछ अनमनी महिलाएं थीं तो कुछ सहानुभूति दिखाने वाले पुरुष भी। कुछ महज एक या दो बैठकों में शामिल हुए तो कुछ जब मन में आया, आ गए। बाकी बचे लोगों ने 'मंजरी' को मुकाम पर ले जाने का दायित्व अपने कंधों पर लिया। 'मंजरी' का लक्ष्य एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना है जहां बुद्धिजीवियों को उनकी खुराक मिले तो शोधकर्ताओं की जिज्ञासा शांत हो। क्रियान्वयन के लिए बहस और तर्क के रास्ते हमेशा खुले रहें। इक्विटी की लगातार कोशिश रही है शोध और क्रियान्वयन के बीच की दूरी को पाटना। ऐसे में हमारा मानना है कि शोध तब तक अप्रासंगिक हैं जब तक कि इनका लोगों की जिंदगी और उनके क्रियाकलापों से जुड़ाव न हो। ठीक इसी तरह सिविल सोसायटी के तौर पर अगर हम जमीनी सच्चाई से वाकिफ न रहें, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक मूल्यों का समावेश है और जो समाज में रहने वाले लोगों के मूल्यों और उनके चरित्र को आकार देते हैं, तो किसी भी कोशिश का कोई मतलब नहीं रहता है।

'मंजरी' एक उद्यम है, क्रियाशीलता को शोध आधारित रचना और आलोचना के नजरिये से देखने का जो महिला अधिकारों के साथ–साथ जीवन के हर पलू को इंगित करे। नियमित गैर सरकारी संगठनों और अकादमिक तंत्रों से इतर 'मंजरी' राजनीति और आदर्शवादिता को लांघ कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को सांस्कृतिक संवे. दनशीलता के आधार पर मापती है। 'मंजरी' उन तमाम कार्यकर्ताओं, विद्वानों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, प्रोफेशनल, गृहणियों और नीति निर्धारकों द्वारा पढ़ी जाएगी जो किसी समस्या के लिए समाधान आधारित नवीन दृष्टि और पृथक सोच रखते हैं। यह पत्रिका अपने पाठकों को जेंडर आधारित मुद्दों को जैविक और सामाजिक आधार पर परखने की छूट देती है। व्यक्ति और समाज की विचारधारा में जेंडर को लेकर क्या बदलाव आये और उनका क्या असर हुआ, इसकी पूरी पड़ताल करने की आजादी लोगों को होगी। यह पत्रिका एक कोशिश है पड़ताल की प्रवृत्ति को जगाने की ताकि लोग तेजी से बदलते और विविधताओं से भरे समाज में पूरी क्षमता से काम करने को तैयार हो सकें जिसमें महिलाओं के प्रति भेदभाव भी एक अहम मुद्दा होगा। महिला समानता और अधिकारों पर 'मंजरी' के दखल से उन बेशुमार कार्यकर्ताओं, संगठनों और विद्वजनों को फायदा होगा जो दहेज, यौन प्रताड़ना, महिला अधिकारों, महिला आरक्षण, आर्थिक सुधार और अल्पसंख्यक समुदायों के निजी कानूनों में रुचि रखते हैं।

पत्रिका का मकसद

इक्विटी फांडेशन खुद को सुविधाविहीन महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता से अवगत कराने और समाज में उनके क्रियाशील प्रभुत्व को स्थापित कराने की दिशा में वाहक के तौर पर देखता है। देश के विकास के हर क्षेत्र में महिलाओं की समान भागीदारी की राष्ट्रीय नीति तभी सफल हो पाएगी जब महिलाओं की भूमिका और उनके योगदान को कमतर आंकने वाले संस्थान और विचारों को हतोत्साति किया जाये या उनका पूरी तरह सफाया किया जाय। 'मंजरी' की परिकल्पना समाज और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के जीवन और उनके स्तर को प्रभावित करने वाले विचारों के निर्माण, विकास और उनके प्रसार के लिए की गई है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के परिप्रेक्ष्य में समानता संबंधी मुद्दों को इस प्रकार समग्र रूप में देखने की जरूरत है जो असमानता की अंतरवर्गीय विशेषताओं को जाहिर कर सके। समानता पर आधारित 'मंजरी' के ज्यादातर आलेख भिन्न–भिन्न समूहों को निशाने पर रखते हैं जो कुछ हद तक बेद जरूरी भी है। इसलिए यह पत्रिका कुछ समूहों के कुछ विशेषाधिकारों के पूर्ण निष्कासन और अंतरवर्गीय दृष्टिकोणों के स्थापन के बीच नियंत्रक की भूमिका में होगी जो नीति निर्धारण और योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान असमानता को उसके तमाम स्वरूपों के साथ सामने रखने में कारगर होगी। ऐसे में इसका मकसद लैंगिक भेदभाव के निर्मूलन की ओर वह विवेचनात्मक चर्चा छेड़ने का है जो वर्तमान परिदृश्य में शोधों का एजेंडा तय कर सके और एक बेहतर वैकल्पिक प्रस्ताव का सृजन कर सके। अब तक यह संगठन कार्यशाला, कांफ्रेंस और अन्य सार्वजनिक आयोजनों के जरिये अपनी प्रतिबद्धता दर्शाता रहा है लेकिन अब इस पत्रिका के माध्यम से यह क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अतिथि लेखकों, जिनमें विद्वजन, अधिवक्ता, सरकार, पत्रकार, फिल्म निर्माता, कवि और सामाजिक कार्यकर्ता हैं, को जोड़ने की कोशिश कर रहा है।

संपादकीय

संरक्षण

पद्मश्री डा. उषा किरण खान
प्रख्यात लेखिका एवं साहित्यकार

मणिकांत ठाकुर
प्रख्यात पत्रकार

प्रो. भारती एस. कुमार
प्रोफेसर (सेवा.) इतिहास, पटना विवि

डा. रेणु रंजन
प्रोफेसर (सेवा.), समाज शास्त्र
पटना विवि

प्रो. डेजी नारायण
प्रोफेसर, इतिहास, पटना विवि

परामर्श

मनीष कुमार
ब्यूरो चीफ, एन.डी.टी.वी. बिहार

कीर्ति
नेशनल कोऑर्डिनेटर, कैरीटास स्विट्जरलैंड (CARITAS Switzerland)

डा. शरद कुमारी
प्रोजेक्ट ऑफिसर, एक्शन एड

सचिव, बिहार महिला समाज

अंजिता सिन्हा
पत्रकार

डा. मधुरिमा राज
लेखिका

भारत एक बहुत बड़ा और जटिल पूंजीवादी देश है। 134 करोड़ की आबादी के कारण इसे दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश कहा तो जाता है लेकिन इसका आकलन करना आसान नहीं है। पाश्चात्य देशों की नजर में तो कई बार इसे अभेद्य भी मान लिया जाता है। भारतीय महिलाओं को भी हम कई बार पितृसत्ता और धर्म के अधीन पीड़ित पाते हैं। 'सती' और बड़े पैमाने पर कन्या भ्रूण हत्या जैसी घटनाओं के कारण पश्चिमी देशों में भारतीय महिलाओं की छवि पिछड़ी हुई और रुढ़िवादिता की शिकार के रूप में बनी है। हालांकि देश में महिला आंदोलनों का बड़ा संपन्न इतिहास रहा है जो उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में पूरे भारत में अपना स्थान बनाते रहे हैं। उस इतिहास का आज की नारी के साथ प्रत्यक्ष संबंध रहा है और यह दिखाता है कि भारतीय महिला आंदोलनों का स्वरूप कितना मुखर और कितना जटिल रहा है जिसने लाखों औरतों को अपने साथ जोड़ा है लेकिन फिर भी विविधताओं और विवादों से भरा है।

भारतीय महिला आंदोलनों की कई धाराएं और रंग रहे हैं, ऐसे में हम सभी के प्रतिनिधि होने का दावा नहीं कर सकते। नेशनल कांफ्रेंस महिलाओं और स्वायत्त संस्थाओं को जो गैर सरकारी, गैर निर्वाचित, गैर राजनीतिक, अहिंसा या गैर भूमिगत तथा फंडिंग एजेंसियां हो सकती हैं, को साथ में लाता है। ये ऐसे औपचारिक और अनौपचारिक समूह होते हैं जो सामाजिक तथा पितृवादी संस्थाओं की व्यापक विवेचना तथा जाति, लिंग, वर्ग, धर्म व यौनाचार के माध्यम से एक विशिष्ट राजनीतिक धारा का निर्माण करते हैं। स्वायत्त महिला आंदोलन होने के नाते हम औरतों के शोषण और उनकी आजादी के मामले पर समान विचार रखते हैं लेकिन हमारे कार्य करने के तरीके जुदा हैं। बदलाव की रणनीति बनाते समय हम राजनीति का मानवीकरण तथा व्यक्ति का राजनीतिकरण करने की कोशिश करते हैं। इसका मतलब है कि हम पितृवादी सत्ता और सामाजिक मूल्यों का सामना करते हैं, जैसे कि आधिकारिकतावाद, उग्रता, प्रतिद्वंद्विता और परिवार व समाज में अनुक्रम, दवाब तथा उच्च वर्ग, जाति और नियमों द्वारा दोहन।

महिलाओं पर हिंसा को चुनौती : महिलाओं के खिलाफ हिंसा चाहे वो दृश्य हों या अदृश्य, सामान्य से लेकर यौन हिंसा तक, जिसमें छेड़छाड़, बलात्कार, दहेज के लिए हत्या, प्रताड़ना, तस्करी और भ्रूण हत्या तक शामिल है, परिवार, समाज या राज्य द्वारा आज भी लगातार जारी हैं। मर्द होने की उग्र भावना लोगों को महिलाओं के बलात्कार और उनकी हत्या तक के लिए उकसाती है जिसकी शिकार कई बार बच्चियां और किशोरियां भी हो जाती हैं। औरतों के प्रति आकर्षित होने वाली औरतें, जिन्हें लेस्बियन और उभयलिंगी कहा जाता है, या फिर वे जो 'मर्द' या 'औरत' किसी भी श्रेणी में नहीं आते, ट्रांसजेंडर, हिजड़ा या सेक्स वर्कर महिलाओं को सामान्य और असामान्य के नाम पर प्रताड़ित करने की घटनाओं में रोज बढ़ोतरी हो रही है। ऐसे कानून जो वैकल्पिक सेक्सुएलिटी को पितृसत्ता के विरुद्ध साबित करते हैं, इन घटनाओं को बढ़ावा देते हैं। ऐसे कानूनों को तुरंत समाप्त किये जाने की जरूरत है।

आज महिलाओं की समस्याओं को लेकर राज्य और समाज अधिक संवेदनशील हो गए हैं और पीड़िताओं को मिलने वाले कानूनी सहायता तथा सहायक तंत्र भी विकसित हो गए हैं, फिर भी औरतों पर हिंसा के मामले भी बढ़ते जा रहे हैं। वैधानिक रूप से अत्यधिक सुधार होने के बाद भी हम जानते हैं कि महिलाओं को सशक्त करने के रास्ते में पितृवादी सोच और संस्थाएं सबसे बड़ी बाधाएं हैं। रास्ता लंबा जरूर है मगर महिलाओं को हिंसा से बचाने के हमारे प्रयास जारी हैं। महिला आंदोलनों की सबसे बड़ी आलोचना यह कह कर की जाती है कि यह कुछ भी हासिल कर पाने में सक्षम नहीं होते हैं। इससे पहले कि हम महिला आंदोलनों के

हमारी बात

मुख्य संपादक

नीना श्रीवास्तव

संपादक

दीपिका झा

शोध

नीना श्रीवास्तव
दीपिका झा

प्रबंधन/व्यवस्था

राहुल कुमार

प्रकाशन

इक्विटी फाउंडेशन

सहयोग

सुलभ इंटरनेशनल
सुधा डेयरी
तक्षशिला एजुकेशनल सोसायटी
पावरग्रिड कार्पोरेशन
द ऑफसेटर, पटना
बंसल ट्यूटोरियल, पटना
इंटरनेशनल स्कूल, पटना

संपर्क

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13
फोन : 0612-2270171

ई–मेल
equityasia@gmail.com
वेबसाइट
www.emanjari.com

© इक्विटी फाउंडेशन

प्रत्यक्ष प्रभावों पर नजर डालें, हमें जान लेना चाहिए कि इन्होंने राजनीतिक दलों में महिलाओं की लॉबी बनाने और कई बड़े संगठनों के गठन के लिए उत्प्रेरित किया। आंदोलनों ने महिलाओं के लिए कानून बनाने के दिशा में काम किया। हालांकि इन्हें लागू करने में अभी भी बहुत कुछ किये जाने की जरूरत है, फिर भी इन्होंने पितृवादी सत्ता को नुकसान तो पहुंचाया ही है। महिला आंदोलनों की सफलता को आंकने के लिए इसकी तुलना ट्रेड यूनियनों या नागरिक अधिकार आंदोलनों से की जानी चाहिए। तमाम अधिनियमों के बीच महिला आंदोलन विजेता की तरह लगते हैं क्योंकि ट्रेड यूनियन आंदोलन 'सेज' के निर्माण के बाद अपना वजूद खो चुके हैं। पारिश्रमिक मुद्रास्फीति और सुपर प्रॉफिट के कारण कम होते जा रहे हैं। नागरिक अधिकार आंदोलन भी कई काले कानूनों तथा कुछ राज्यों में सशस्त्र सेना की मौजूदगी के कारण कमजोर हो गए हैं। लेकिन लंगड़ों की दौड़ में प्रथम आ जाना किसी जश्न का सबब नहीं बनता, असल में तो ये एक चेतावनी है कि और बुरा समय आने वाला है और हमें इसके लिए तैयार रहना होगा।

ये 1970 का दशक रहा होगा जब तत्कालीन महिला आंदोलन ने ज्यादा उग्र रूप लेना शुरू कर दिया था। खासकर आपातकाल के दौरान जब सभी राजनीतिक और प्रगतिवादी समूहों को दबाया जा रहा था। उस दवाब का विरोध करते हुए महिला संगठनों ने काफी ताकत और दायरा बढ़ा लिया था। आज कई अलग–अलग मुद्दों पर लड़ाई लड़ी जा रही है जिनमें दुर्व्यवहार करने वाले पार्टनर, दलित औरतों के अधिकार, कर्मचारियों के अधिकार, यौन प्रताड़ना और कई अन्य शामिल हैं। अब केवल वामपंथी या प्रगतिशील समूह ही नहीं बल्कि दक्षिणपंथी भी इस लड़ाई के भागी हैं। वामपंथियों और स्वयंसेवी संगठनों से निराश होने के बाद अब महिला आंदोलनों को स्वयं अपना आधार बढ़ाना होगा। मौके कई हैं। पंचायती राज संस्थाओं में आरक्षण मिलने के बाद लाखों औरतें जनप्रतिनिधि चुनकर सामने आ रही हैं तो वहीं स्वयं सहायता समूह भी मजबूती से मौजूद हैं। कह सकते हैं कि अब समय आ गया है जब महिला सशक्तीकरण के नाम पर राज्य द्वारा प्राप्त किये गये सहकारी लाभों को वापस ले लिया जाय। ये जरूरी है कि बराबर का साझीदार बनने के लिए सामूहिक संघर्षों में हमारी भागीदारी बढ़े क्योंकि हमारे पीछे 70 वर्षों का इतिहास है।

अंत में कह सकते हैं कि भारत में महिला आंदोलन सक्रिय और आधुनिक रूप में रहे हैं जिन्होंने राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक आंदोलनों को प्रभावित किया है लेकिन अभी भी इसके सामने कई समस्याएं मौजूद हैं। खासकर दक्षिणपंथी समूहों द्वारा नारीवाद की अवधारणा को पलट कर रख देना और महिला अधिकारों को समझने में आने वाली समस्याएं इनके महत्व को कम कर रही हैं। पत्रिका के इस अंक में हमने यह दिखाने की कोशिश की है कि भारतीय महिला आंदोलन विविधतापूर्ण रहे हैं और आज के भारत की महिलाएं अपनी खुद की भूमिका को तय करने में लगी हैं। आज वे पश्चिम की रुढ़िवादी और उपेक्षित महिला की धारणा से काफी अलग है। वस्तुतः आज वे व्यक्तिगत रूप से और संगठन के तौर पर भी कहीं ज्यादा सक्रिय हैं और अपनी जिंदगी को नया आकार दे रही हैं।

Srivastava

नीना श्रीवास्तव

अतिथि संपादक

माफ कीजिये श्रीमान ! कहां हैं आपकी बेटियां

कमला भसीन

कमला भसीन जानी–मानी नारीवादी लेखिका, समाज सेविका, समाज विज्ञानी और कवयित्री हैं। आजीविका और जेंडर के मुद्दे पर वे संयुक्त राष्ट्र से पिछले 27 साल तक जुड़ी रहीं। स्वयंसेवी संगठन 'संगत' की वे सलाहकार हैं। इसके अलावा वर्षों से वे जेंडर, मीडिया, शिक्षा और मानव विकास जैसे मुद्दों पर काम करती आई हैं। उन्हें उनकी कविता 'क्योंकि मैं लड़की हूं, मुझे पढ़ना है' से भी बखूबी जाना जाता है। वे 'वन बिलियन राइजिंग' की दक्षिण एशिया कोर्डिनेटर भी हैं।

दुनिया में ऐसा एक भी देश नहीं है जहां पितृसत्ता मौजूद नहीं है। यह एक वैश्विक व्यवस्था बन चुकी है। 1967 में जब मैं 21 वर्ष की थी तो जर्मनी आई थी। मैंने सोचा नहीं था कि मुझे एक विक. सित देश में भी पितृसत्ता दिखाई देगी लेकिन मैंने इसे हर जगह पाया। जैसे कि मैं मातृभूमि भारत से आई और यहां पितृभूमि जर्मनी को पाया। मैं मां गंगा के देश से आई और यहां पिता राईन को पाया। मैं देवियों के देश से आई और मैंने यहां प्रभु परमेश्वर को देखा। पत्रिकाओं में नंगी औरतों को सेक्स की वस्तु के तौर पर दिखाये जाने से मैं चकित थी। औरत की देह हर जगह बेची जाती है चाहे वो लोकतांत्रिक देश ही क्यों न हों जहां कागजों में औरत और मर्द एक समान दिखाये जाते हैं। मैंने पाया कि जर्मन भाषा तक में पितृसत्ता की बू आती थी। एक अविवाहित महिला को 'फ्रॉलाईन' यानी छोटी औरत कहा जाता था, चाहे वो 80 वर्ष की बुजुर्ग ही क्यों न हो। विश्वविद्यालयों में महिला प्रोफेसरों की संख्या नाम मात्र की ही थी। यहां तक कि 200 साल के लोकतंत्र के बाद भी अमेरिका में एक भी महिला राष्ट्रपति नहीं हुई। राजनीतिक घरानों के उत्तराधिकार भी पिता से बेटों तक गए, बेटियों तक नहीं। बुश सीनियर, बुश जूनियर, केनेडी सीनियर, केनेडी जूनियर। माफ कीजियेगा, आपकी बेटियां कहां हैं श्रीमान?

स्कैंडिनेविया के पारिवारिक नामों को देख लीजिए। ज्यादातर 'सन' के नाम पर खत्म होते हैं, एरिक्सन, जॉनसन।

महिला आंदोलनों ने हर जगह इन चुनौतियों का सामना किया है और कई चीजें सुधरी भी हैं। हमें हर छोटे से छोटे सुधार के लिए लड़ना है और इसके लिए बड़ी कीमत चुकानी है। इनमें सबसे बड़ी चुनौती है महिलाओं और बच्चियों पर हिंसा। संयुक्त राष्ट्र के मुताबिक, हर तीन में से एक महिला अपने जीवन में कभी न कभी हिंसा की शिकार होती है। इसका मतलब है कि एक बिलियन औरतें हिंसा का सामना करती हैं। इसमें भी सबसे दुखद है कि हिंसा घर के भीतर ही होती है और करने वाले भी अपने ही होते हैं। घरेलू आतंकवाद का यह रूप वैश्विक है। विश्व की दो महान सभ्यताओं भारत और चीन ने केवल पितृसत्ता के नाम पर 100 मिलियन से अधिक लड़कियों और महिलाओं को मार डाला है। ये सब किया जा रहा है नई तकनीकों के जरिये और बेहद पढ़े–लिखे तबके के द्वारा। 16वीं से 18वीं शताब्दी के बीच यूरोप में लाखों महिलाओं को चुड़ैल के नाम पर मार दिया गया। दुनिया भर में लाखों औरतें बेच दी जाती हैं, लाखों को जननांग विकृति का सामना करना पड़ता है, लाखों औरतें बार्बी डॉल के जैसी दिखने की चाहत में कुपोषित रह जाती हैं तो लाखों औरतों को बलात्कार का शिकार बनना पड़ता है। इन सबका ही नतीजा है कि आज पहली बार इस धरती पर औरतों की संख्या मर्दों से कम हो गई है।

मार्च 2014 में यूरोपीय फंडामेंटल राइट्स एजेंसी की जोआना गुडी द्वारा किये गये अध्ययन में कहा गया है कि यूरोपीय यूनियन की एक–तिहाई यानी करीब 62 मिलियन औरतों ने शारीरिक या यौन हिंसा झेली है। जर्मनी में तो यह संख्या औसत से भी ज्यादा है और यहां 35 फीसद महिलाएं इसकी शिकार हुई हैं। 55 फीसद महिलाओं को यौन प्रताड़ना का सामना करना पड़ा जबकि इनमें से 75 फीसद नेतृत्व के स्तर पर थीं। इससे यह स्पष्ट होता है कि यौन हिंसा का आर्थिक पिछड़ेपन से कोई लेना–देना नहीं है। मुझे यह बताया गया है कि अति विकसित जर्मनी में भी महिलाओं को पुरुषों की तुलना में 22 फीसद कम पारिश्रमिक दिया जाता है और यहां केवल 3 फीसद औरतें ही शीर्ष पदों पर हैं। जर्मनी के नारीवादियों का मानना है कि यहां के बलात्कार से जुड़े कानूनों में संशोधन की सख्त आवश्यकता है ताकि इसे अधिक प्रभावी बनाया जा सके। एक जर्मन नारीवादी विचारक ने सही ही कहा है कि औरतें अंतिम उपनिवेश होती हैं। उनकी देह, यौवन, प्रजनन और काम करने की क्षमता पर आज भी शासन किया जाता है।

1995 की यूएनडीपी की मानव विकास रिपोर्ट कहती है कि पूरी दुनिया में महिलाओं द्वारा किये जाने वाले घरेलू कामों का मूल्य 11 ट्रिलियन डॉलर वार्षिक के बराबर है। वर्ष 2012 की आईएलओ की रिपोर्ट भी कहती है कि पूरी दुनिया में किये जाने वाले कामों का 60 फीसद हिस्सा औरतें करती हैं, 50 फीसद अनाज वे उपजाती हैं लेकिन आय का केवल 10 फीसद पाती हैं और

अतिथि संपादक

केवल एक फीसद संपत्ति की स्वामी हैं। इस कांफ्रेंस में जो सवाल उठाया गया है वो ये है कि औरतों की बराबरी के मार्ग में कौन सी चुनौतियां हैं। मैं इसके जवाब में तीन चुनौतियों की बात करूंगी। ये तीनों ही मूल कारणों के रूप में देखे जा सकते हैं। अगर मैं ऐतिहासिक तौर पर शुरू करूं तो मैं कहूंगी कि धर्म सबसे पहली बाधा है। कोई भी धर्म ये स्वीकार नहीं करता कि एक औरत पोप बने, शंकराचार्य या दलाई लामा बने। सारे धर्म अपने सिद्धांतों और व्यवहार में स्त्री और पुरुष के बीच एक पदक्रम का निर्माण करते हैं। यदि भगवान पुरुष है तो पुरुष भी भगवान है। अब क्योंकि धर्म पदक्रम बनाते हैं इसलिए वे राष्ट्र के संविधान को भी नहीं मानते हैं। वे संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकारों के घोषणापत्रों को भी नहीं मानते। फिर भी कई राजनीतिक दल इन धर्मों का प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से समर्थन करते हैं। अमेरिका और वेटिकन उन कुछ देशों में हैं जिन्होंने सीईडीएडब्ल्यू को मंजूरी नहीं दी है। दोस्तों, हममें से कई नारीवादी ये मानते हैं कि पितृसत्तावादी धर्मों को चुनौती दिये बिना हम लैंगिक समानता नहीं ला सकते। इसलिए हमारे बाएं हाथ को पता होना चाहिए कि दाहिना हाथ क्या कर रहा है। मैं ये जानकर खुश हूं कि वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेज और ब्रेड फॉर द वर्ल्ड जैसे संगठन चर्च में इस सत्ता को चुनौती देने के काम में लगे हैं।

दूसरी बड़ी चुनौती जो मेरे विचार में है वो है पूंजीवादी पितृसत्ता। आज बच्चों और महिलाओं की पोर्नोग्राफी और तस्करी करोड़ों का कारोबार बन चुका है। कॉस्मेटिक्स यानी श्रृंगार प्रसाधन बड़े बिजनेस हैं। बार्बी डॉल और बंदूकों तथा सुपरमैन जैसे हिंसक कम्प्यूटर गेम करोड़ों का मुनाफा कमा रहे हैं। हॉलीवुड, बॉलीवुड और कॉरपोरेट मीडिया विशाल उद्योग बन चुके हैं। सभी औरतों का इस्तेमाल वस्तु की तरह करते हैं। वे उन्हें सेक्स की चीज के तौर पर, सहायक और पुरुषों को 'मर्द' बनाने वाली के तौर पर प्रस्तुत करते हैं। तीसरी चुनौती विकसित दुनिया द्वारा थोपा गया आर्थिक प्रतिमान है। यह लालच पर आधारित व्यवस्था है। इसने गला काट मुकाबले को प्रोत्साहित किया है और ऐसे में इसने असमानता को फैलाया है, पर्यावरण को नष्ट किया है और महिलाओं व गरीबों को हाशिये पर धकेला है। यह प्रतिमान कभी भी औरतों के लिए बराबरी और उनके अधिकारों की वकालत नहीं कर सकता। हाल ही में हुए एक अध्ययन में बताया गया है कि जर्मनी में आर्थिक विकास और निजी संपत्ति में वृद्धि होने के बाद भी गरीब और अमीर के बीच की खाई 15.2 फीसद तक बढ़ी है जो अब तक की सर्वाधिक है। तो अगर विकास का यह फार्मूला आपके देश में रोजगार, सम्मान और लैंगिक समानता नहीं ला सका तो ये हमारे देश में कैसे ला सकता है?

हमें कुछ अन्य मुद्दों की ओर भी देखना होगा जैसे कि युद्ध और धर्मों में व्याप्त कट्टरवाद लेकिन केवल इस्लाम में ही नहीं, जो महिलाओं के खिलाफ हिंसा को बढ़ाता है और उन्हें बाधित करता है। अमेरिका और यूरोपीय यूनियन युद्ध में सबसे ज्यादा सक्रिय रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद के मुख्य देश हथियारों के सबसे बड़े आपूर्तिकर्ता और विक्रेता हैं।

दोस्तों, हममें से ज्यादातर लोग जेंडर को मुख्यधारा में लाने की वकालत करते हैं। लेकिन इसमें भी कई समस्याएं हैं। मुख्यधारा मर्दधारा बन चुकी है। इसलिए मुख्यधारा में घुसने की बजाय हमें इसका एक हिस्सा बनकर कई अन्य हिस्सों को चुनौती देनी होगी। क्या हम इसके लिए तैयार हैं? महात्मा गांधी आज से 80 साल पहले ही इन समस्याओं को जान चुके थे। एक बार एक पत्रकार ने गांधी जी से पूछा था कि क्या आप चाहते हैं कि भारत का जीवन स्तर भी ब्रिटेन के जीवन स्तर जैसा हो? गांधी जी ने जवाब दिया था ''छोटे से देश ग्रेट ब्रिटेन को अपना जीवन स्तर सुधारने के लिए आधी दुनिया का शोषण करना पड़ा। फिर सोचो भारत को कितनी सारी दुनिया का दोहन करना पड़ेगा? यही कारण रहा कि विश्व आर्थिक फोरम के जवाब में हमने विश्व सामाजिक फोरम की शुरुआत की ताकि आमजन समर्थित, महिला समर्थित और प्रकृति समर्थित फार्मूला तैयार किया जा सके। वर्ल्ड सोशल फोरम का मुख्य नारा है 'संभव है पृथक दुनिया।'

दोस्तों, अब मैं समाधान की ओर आना चाहती हूं। मैं अपने 44 साल के कामों के बारे में बताना चाहती हूं। पितृसत्ता, नव उदारवादी आर्थिक विकास, संघर्ष और युद्ध, ये सभी ग्लोबल हैं इसलिए न्याय, मानवाधिकार और स्थायी विकास के लिए हमारा संघर्ष भी ग्लोबल होना चाहिए। हमें वैश्विक एकजुटता और साझेदारी का प्रदर्शन करना होगा। मैं 'पीस वुमेन' की सह अध्यक्ष हूं। मैं 'वन बिलियन राइजिंग' की दक्षिण एशिया कोर्डिनेटर हूं। मैं सोचती हूं कि आज पुरुषों और लड़कों को लैंगिक समानता और न्याय के आंदोलन में साथ आना चाहिए। मर्दों को ये समझना होगा कि पितृसत्ता उन्हें भी नुकसान पहुंचा रही है। पितृसत्ता उन्हें पावर और सुविधा तो देती है लेकिन उन्हें अमानवीय बना देती है, उनसे विनम्रता छीन लेती है। भारत में 40 फीसद पुरुष अपनी पत्नियों को पीटते हैं। इसका मतलब है कि देश में 40 फीसद मर्द अपराधी हैं। सभी मर्द बलात्कारी नहीं होते लेकिन सभी बलात्कारी मर्द होते हैं। 99 फीसद आतंकवादी मर्द होते हैं। अमेरिका में हर कुछ महीने के बाद स्कूलों में फायरिंग कर कई लोगों की जान लेने वाले भी युवा लड़के होते हैं, लड़कियां नहीं। दोस्तों, ये लोग जन्म से हिंसक नहीं होते हैं। समाज और हम सब लड़कों को खेलने के लिए बंदूकों वाले खिलौने देते हैं। हम उन्हें सिखाते हैं कि वे कुछ भी कर सकते हैं क्योंकि वे लड़के हैं। हम उन्हें कहते हैं कि रोना मत क्योंकि मर्द कभी रोते नहीं हैं। हम उन्हें बहुत धीरे–धीरे और क्रम से हिंसक बनाते जा रहे हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि पुरुषों को औरतों को बराबरी का दर्जा देने, बच्चों को संभालने या अपनी भावनाओं को काबू में रखने नहीं आता। मुख्यधारा में बने रहने और अच्छा प्रदर्शन करने के दवाब में कई मजबूत औरतें भी धीरे–धीरे मर्दाना व्यवहार करने लगती हैं। यह एक खतरनाक ट्रेंड है। हमें खुद को कठोर और दमनकारी बनाने के बजाय मर्दों को विनम्र बनने में उनकी मदद करनी होगी।

Kamla Bhasin

कमला भसीन

अनुक्रमणिका

संकल्पना

हमारी बात : संपादकीय

अतिथि संपादक : माफ कीजिये श्रीमान ! कहां हैं आपकी बेटियां — कमला भसीन 1.

यात्रा : स्त्री आंदोलन : पहचान से सम्मान तक 4.
—भक्ति आंदोलन में दिखी पीड़ा 5.

वीरांगनाएं : वो जिन्होंने जलाई मशाल 7.
—रोशनी बुझने न दी 9.
—आजादी के पूर्व और पश्चात् 9.

विचार मंच : विकास की जेंडरवादी समालोचना 11.
—मैत्रेयी कृष्णराज

साहस : साधारण औरतें, असाधारण कार्य 13.

विश्व मंच : पूरी दुनिया में जागा स्त्रीवाद 14.

बढ़ता दायरा : आधा आसमान हमारा 16.
—प्रो. विभूति पटेल

आदिवासी संघर्ष : लंबी लड़ाई के बाद पाया बराबरी का दर्जा 20.

कोशिश : कार्य और उनके प्रतिबिंब 23.
—उर्वशी बुटालिया

बिहार में नारीवाद : बिहार का समकालीन महिला आंदोलन 25.
—प्रो. भारती एस. कुमार

बिहार : समाधान की ओर : महिला शांति सेना 29.

बिहार की वामाएं 30.

मुस्लिम औरतें : दावा अपनी जमीन का 32.

दलित संघर्ष : दलित महिला समिति : सम्मान की लड़ाई 33.
—जाह्नवी अंधरिया

परिवर्तन : आंदोलनों का बदला स्वरूप 35.

चर्चित : महिला संगठनों की भूमिका 37.

श्रोत

www.shodhganga.inflibnet.ac.in
www.yourarticlelibrary.com
www.google.com
www.hindustantimes.com
www.timesofindia.com
www.europe-solidaire.org
http://chnm.gmu.edu
https://sol.du.ac.in
http://respectwomen.co.in
www.encyclopedia.com
https://hessianwithteeth.wordpress.com
www.bannedthought.net
http://mychoiced.blogspot.in
http://peacemagazine.org
http://www.manushi-india.org
https://www.dawn.com

Images from

http://www.burntroti.com
https://in.pinterest.com

आवरण चित्र विवरण

सुदेशना सेनगुप्ता द्वारा चित्रित। सुश्री सुदेशना ने विश्वभारती विश्वविद्यालय से फाइन आर्ट्स की पढ़ाई की है और वे देश के अलावा सियेटल, कैलिफोर्निया तथा न्यू मेक्सिको में कला के बारे में पढ़ाती रही हैं।

स्त्री आंदोलन : पहचान से सम्मान तक

आजादी के पहले स्त्रियों का आंदोलन

19वीं शताब्दी में पश्चिमी देशों में चल रहे समाज सुधार आंदोलनों ने भारत में प्रगतिशील लोगों को आगे आने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने समाज में व्याप्त बुराइयों सती प्रथा, बाल विवाह और बाल विधवा जैसी अनेक कुप्रथाओं का विरोध करना शुरू किया। हालांकि परंपरागत सोच से अलग राय रखने वाले उन विचारकों का तब उतनी ही शीघ्रता से बहिष्कार भी होने लगा और परिणामतः वे अलग–थलग पड़ गए। इससे उन्हें अपने काम और विचार को ज्यादा केन्द्रित तरीके से प्रसारित करने और उस पर ज्यादा समय खर्च करने का मौका मिला। उन्होंने इसका सदुपयोग शिक्षण संस्थान खोलने, आश्रम बनाने और इस प्रकार की अन्य संस्थाओं को खोलने में किया जिनके माध्यम से महिलाओं और बच्चों को बेहतर माहौल प्रदान किया जा सके। इस कालावधि में देश में कुछ ऐसी महिलाएं भी हुईं जिन्होंने रूढ़ीवादी माहौल में रहकर भी अपनी अलग शैली विकसित की। उन विचारकों और महिलाओं से मिले प्रोत्साहन ने कालांतर में देश में महिला आंदोलनों का मार्ग प्रशस्त किया।

गैरेल्डाइन फोर्ब्स (1982 : 525) ने भारत में नारीवादी आंदोलनों की शुरुआत के लिए 1880 से लेकर 1940 तक की अवधि को पहला चरण माना है। उसके मुताबिक इस दौरान बने सामाजिक–राजनीतिक संगठनों ने अपने भीतर महिला ईकाई का गठन करना शुरू कर दिया था। इन इकाइयों ने महिलाओं के मुद्दों को धीरे–धीरे सामने लाना शुरू कर दिया और उन्हें अपने हित में बदलाव लाने का मंच प्रदान कर दिया। 1904 में नेशनल सोशल कांफ्रेंस में एक महिला विंग का गठन किया गया जो बाद में इंडियन वीमेन कांफ्रेंस कहलाया।

हमारी विरासत ने हमें स्त्रियों के लिए कैदखाने नहीं दिये थे लेकिन जब सत्ता और समाज की हूकुमतें बदलीं तो उनकी दीवारों में सबसे पहले कैद की गईं औरतें। हर मोड़ पर रोकी गईं वामाओं ने कभी खुलकर तो कभी छुपकर इसका विरोध किया।

ऑल इंडिया वीमेन कांफ्रेस (एआईडब्ल्यूसी) ने देश के छोटे–छोटे शहरों में अपनी शाखाएं खोलने में देरी नहीं की और जल्दी ही नारीवादी संगठनों को आकार मिलने लगा। यद्यपि कि इनमें संभ्रांत हिन्दू महिलाओं के हित में कार्य करने वाले संगठनों की अधिकता रही फिर भी दूसरे धर्मों और जातियों की महिला संगठनों का वजूद भी सामने आने लगा था। एआईडब्ल्यूसी के अलावा यंग वीमेन क्रिश्चियन एसोसियेशन (वाईडब्ल्यूसीए) तथा अंजुमन–ए–इस्लाम ने भी काम करना शुरू कर दिया था। भारत में आजादी के पूर्व के इन संगठनों को जो बात जोड़ती थी वो ये कि सभी संगठन पढ़ी–लिखी और अंग्रेजी बोलने वाली महिलाओं के नेतृत्व में काम कर रहे थे। हिन्दी, मराठी, अंग्रेजी, बांग्ला, गुजराती, मलयालम और तमिल जैसी भाषाओं में महिला समर्थित साहित्य छपने लगे थे। इन संगठनों का मकसद महिलाओं को राजनीतिक रूप से समर्थ बनाना था तो साथ ही साथ उनमें दक्षता का संवर्द्धन करना भी था। एआईडब्ल्यूसी बाल विवाह पर रोक लगाने और औरतों को वोट देने के अधिकार के लिए जनमत संग्रह करने के साथ–साथ उनमें सिलाई, बुनाई, खाना बनाने और नृत्य–संगीत जैसी सांस्कृतिक विशेषताओं को बढ़ावा देने के काम में भी जुटा था। दूसरी ओर, वाईडब्ल्यूसीए सर्वधर्म के सिद्धान्त पर चलते हुए महिलाओं को सक्षम बनाने के प्रयास में जुटा था। जहां एआईडब्ल्यूसी में हिन्दू महिलाओं का प्रभुत्व था तो वहीं वाईडब्ल्यूसीए में निर्णय लेने के स्तर पर ईसाई अधिकारियों और उन राजनेताओं की ईसाई पत्नियों का प्रभाव ज्यादा था जो ब्रिटिश शासकों के अधिक करीब थे। वाईडब्ल्यूसीए नर्सों, टाइपिस्टों, शिक्षिकाओं को प्रशिक्षण देने के साथ ही महिलाओं को बेकरी, सजावट तथा भारतीय एवं पाश्चात्य शैली के संगीत और नत्य के बारे में बताता था। इन सबसे इतर अंजुमन ट्रस्ट केवल मुस्लिम महिलाओं के लिए काम करता था और वह भी सिर्फ उन्हें घर में काम करने के लायक बनाने के लिए। मुसलमानों में परदा प्रथा थी और इसलिए उनका घर से बाहर निकलकर काम करना मुमकिन नहीं था। वाईडब्ल्यूसीए को जहां अपने काम के लिए बाहरी दुनिया का सामना करना पड़ा और इसमें उन्हें मर्दों का मामूली साथ मिला, वहीं एआईडब्ल्यूसी को अपने घर के पुरुषों का पूरा साथ मिला। इसके उलट अंजुमन ट्रस्ट केवल मुस्लिम समुदाय तक सीमित रहा। अन्य धर्मों की तुलना में खान–पान और व्यवहार में अत्यधिक अंतर होने के कारण वे बाहरी समाज के साथ तालमेल नहीं बना पाईं। हालांकि उनके पुरुष आर्थिक और राजनीतिक रूप से अच्छे स्तर पर थे फिर भी उनके आंदोलन को वृहद स्वरूप नहीं मिल पाया।

उस समय जब अलग–अलग समुदाय और धर्मों के संगठन अपने स्तर से महिलाओं को मुख्यधारा में लाने और उनकी दक्षता संवर्द्धन में लगे हुए थे, ब्रिटिश सरकार की भूमिका भी बहुत हद तक सहायक रही। 1772 से लेकर 1947 के बीच अंग्रेजी सरकार ने महिलाओं के हित में कई कानून पारित किए। उस दौरान जिन बातों को लेकर आंदोलन खड़े किये गए उनमें सती प्रथा का उन्मूलन, विधवा विवाह, एक विवाह, बाल विवाह की समाप्ति तथा स्त्रियों की शिक्षा प्रमुख थे। राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती और एम.जी.राणाडे जैसे लोग इन आंदोलनों को आगे लाने वालों में रहे तो उनके प्रयासों और अंग्रेजों की सक्रियता से समाज सुधार के क्षेत्र में कई अधिनियम भी लाए जा सके। कन्या भ्रूण हत्या, सती प्रथा और बाल विवाह को रोकने के लिए कानून बनाए गए। 1891 में विवाह की आयु तय करने के लिए एक कानून लाया गया जिसके बाद लड़कियों के विवाह की आयु को 10 वर्ष से बढ़ाकर 12 वर्ष किया जा सका। इसके अलावा भी कई सुधार उस दौरान किए गए।

भक्ति आंदोलन में दिखी पीड़ा

भक्ति आंदोलन के दौरान एक बड़ी संख्या महिलाओं की रही जिन्होंने अपनी कविताओं में ईश्वर को अपने अनंग और आराध्य के रूप में दिखाया। उनकी कविताओं में ईश्वर की भक्ति के साथ–साथ समाज में महिलाओं की स्थिति और उनकी वेदना भी साफ तौर पर दिखी। कुछ कवयित्रियां सामाजिक उपेक्षा और पुरुषों के रवैये के खिलाफ अत्यंत विद्रोही रहीं तो वहीं कुछ ने अपनी परंपरागत भूमिका को स्वीकारते हुए पत्नी और मां के रूप में खुद को सामने रखा। उस दौर की महिलाओं की कविताओं में भक्ति के माध्यम से स्त्री की सामाजिक निम्नता, पति द्वारा छोड़ा जाना और परिवार में उनकी उपेक्षा का दंश दिखता था और एक तरह से इस कालखंड यानी छठी शताब्दी से लकर 13वीं शताब्दी को नारीवादी आंदोलन को दिशा देने वाला कहा जा सकता है।

अक्कामहादेवी

मीराबाई

"वेद रो रहे हैं, पुराण चीख रहे हैं,
स्त्रियों के लिए कुछ भी अच्छा नहीं होने वाला है,
मैं स्त्री शरीर के साथ जन्मी
फिर मैं सत्य को कैसे पा सकती हूं?
वे मूर्ख, मोहक और छल करने वाली हैं
स्त्रियों के साथ संबंध रखना विनाशकारी है।"

(बहिनाबाई की पंक्तियां)

अक्कामहादेवी : 12वीं शताब्दी में दक्षिण कर्नाटक से ताल्लुक रखने वाली शिव की भक्त अक्कामहादेवी को विद्रोही संत माना जाता है। उस दौर में जब महिलाओं का घर से बाहर निकलना भी अच्छा नहीं माना जाता था, महादेवी ने शिव की भक्ति में खुद को सराबोर कर दिया था। वे पुरुष संतों की भांति ही निर्वस्त्र रहती थीं और वनों में घूमा करती थीं। उनकी कविताओं में समाज की प्रथाओं का बहिष्कार और अपनी भूमिका के प्रति गहरा रोष नजर आता था। अपनी कविताओं में उन्होंने शिव को चेन्नामल्लिकार्जुन का नाम दिया है।

जनाबाई : जनाबाई का जन्म 13वीं शताब्दी में महाराष्ट्र के एक शूद्र परिवार में हुआ था। बहुत ही कम उम्र में उनके माता–पिता ने उन्हें उच्च जाति के नामदेव के यहां घरेलू काम–काज के लिए भेज दिया था। नामदेव तब भक्ति कवियों का बड़ा नाम थे। वहां रहते हुए जनाबाई न केवल नामदेव की नौकरी करती रहीं बल्कि वे उनकी बड़ी भक्त भी हो गईं। कालांतर में वे स्वयं कविता लेखन करने लगीं और उन्होंने करीब 300 से अधिक कविताओं की रचना की। उन्होंने भी अपनी कविताओं में ईश्वरीय साधना के माध्यम से स्त्री की पीड़ा को दर्शाया था। एक निम्न जाति की स्त्री होने के कारण उन्हें जिस सामाजिक उपेक्षा का सामना करना पड़ा था वो उनकी कविताओं में साफ दिखाई देता था।

मीराबाई : भक्ति आंदोलन से लेकर आज तक जिस महिला भक्त और कवयित्री ने आम लोगों में से ज्यादा लोकप्रियता पाई वो मीराबाई हैं। राजपूताने में जन्मीं मीराबाई को कृष्ण के प्रति अटूट भक्ति और उनकी रचनाओं के लिए जाना जाता है। उन्होंने कृष्ण को ही अपना पति माना था और दिन–रात उनकी ही धुन में रमी रहती थीं। कथाओं के मुताबिक, मीरा को उनकी इच्छा के विरुद्ध एक राजघराने में बहुत छोटी आयु में ब्याह दिया गया था। यूं तो उनकी रचनाओं को कृष्णप्रेम के रूप में देखा जा सकता है लेकिन ध्यान दें तो पाएंगे कि मीरा ने उनमें अपनी उपेक्षा और स्त्री होने के नाते उनकी इच्छाओं का दमन किये जाने के बारे में बताया है। मीरा के पति ने ईर्ष्यापूर्वक मीरा को जहर देकर मारने की कोशिश की थी। उनकी ननद ने भी मीरा के खिलाफ षडयंत्र रचा था क्योंकि मीरा संत बनना चाहती थीं। मीरा ने लिखा है कि कैसे उन्हें एक राजघराने की परंपरा के विरुद्ध जाने के कारण प्रताड़ित किया गया। बाद में सबसे विद्रोह कर जब वे वृंदावन पहुंची तो वहां भी औरत होने के कारण उन्हें स्वीकार नहीं किया गया। हालांकि बाद में उनके समर्पण और भक्ति को देखने के बाद वृंदावन ही नहीं वरन पूरे भारतीय समाज ने उन्हें संत की उपाधि दी।

बहिनाबाई : 17वीं शताब्दी की इस महिला संत का नाम भी विठोबा यानी कृष्ण की भक्त के रूप में लिया जाता है। महाराष्ट्र में जन्मीं बहिनाबाई, जिन्हें लोग 'बहिना' भी कहते हैं, ने महिलाओं की पीड़ा को अपनी कविताओं के माध्यम से दिखाया था। उनकी कविताएं मुख्य रूप से आत्मकथात्मक होती थीं और उनमें उनके बाल्यकाल तथा विवाहित जीवन की कथाएं होती थीं। उनके पति को भी उनके इस प्रकार के व्यवहार से शिकायत थी और विशेषकर तुकाराम के प्रति उनकी भक्ति के वे खिलाफ थे। यद्यपि कि बहिनाबाई विठोबा के प्रेम में डूबी थीं, तथापि उनमें अपने सांसारिक पति के लिए भी उतना ही समर्पण था। बहिनाबाई ब्राह्मण परिवार से थीं लेकिन नीची जाति के संत तुकाराम के प्रति उनकी भक्ति के कारण वे अक्सर विवादों में आ जाती थीं।

उस दौर में महिलाओं के संत बनने के पीछे की जो सच्चाई थी वो ये भी थी कि स्त्रियों को तब समाज में बराबरी पाने और अपनी लेखनी को मान्यता दिलाने के लिए ईश्वर भक्ति का सहारा लेना पड़ता था। किसी न किसी आराध्य के प्रति समर्पित होकर ही वे अपनी रचनाओं को लोगों तक पहुंचा पाती थीं। बिना इसके पुरुष वर्चस्व वाले समाज में उनके लिए अपनी पहचान बना लगभग असंभव था।

वो जिन्होंने जलाई मशाल

भारत के इतिहास में ऐसी अनगिनत नायिकाएं रही हैं जिन्होंने स्त्री और समाज के हित में विद्रोह की मशाल जलाई थी। उनमें से कुछ के बारे में दुनिया ने जाना तो कई की आवाजें अनसुनी रह गईं। यहां उन कुछ महिलाओं के बारे में बताने की कोशिश की गई है जिन्होंने स्त्रियों के आंदोलन को दिशा देने में अहम भूमिका निभाई थी।

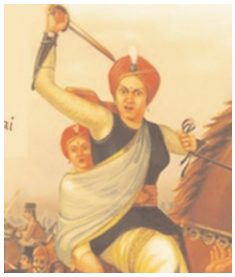

झांसी की रानी : कविताओं में जिसे 'मर्दानी' कहा गया है, वो झांसी वाली रानी थी। झांसी प्रमुख गंगाधर राव की पत्नी रानी लक्ष्मी बाई ने अपने राज्य और अधिकार के लिए जिस दृढ़ता का परिचय दिया था वो 21वीं सदी में भी औरतों की स्वाधीनता और सम्मान का प्रतीक बना हुआ है। अंग्रेजों के बनाये कानून के विरोध में अपना अधिकार पाने के लिए लक्ष्मी बाई ने न केवल हथियार उठाया बल्कि अपनी सेना का नेतृत्व भी किया। लक्ष्मी बाई के हौसले ने स्त्रियों को अपने अधिकार के लिए लड़ना सिखा दिया। वो मर्दों के भेष में जंग के मैदान में जाती थीं। उनके नेतृत्व में सैनिकों ने अंग्रेजों से जमकर लोहा लिया।

बेगम हजरत महल : अवध की रानी बेगम हजरत महल सुख–सुविधाओं में रहने की आदी थी लेकिन जब बात उनके स्टेट की आई तो मैदान–ए–जंग में उतरने में भी उन्होंने देरी नहीं लगाई। अंग्रेजी सेना को उन्होंने खूब टक्कर दी। हालांकि अंत में उन्हें नेपाल में शरण लेनी पड़ी, फिर भी अपने अधिकारों के लिए बेगम का यूं खुलकर सामने आना कई पीढ़ीयों के लिए सबक बन गया।

राससुंदरी देवी : बंगाल की गृहिणी राससुंदरी का नाम इतिहास में कम ही जगहों पर आया है लेकिन उन्होंने जो किया उससे उस समय की कई महिलाओं को प्रेरणा मिली। राससुंदरी न तो कभी विद्यालय गईं और न ही कभी औपचारिक शिक्षा ही ली लेकिन फिर भी 1876 उन्होंने अपनी आत्मकथा 'आमार जीबोन' (मेरा जीवन) लिखी और इसमें उस समय की महिलाओं की दशा को समाज के सामने रख दिया। अपनी आत्मकथा के माध्यम से राससुंदरी ने तब महिलाओं को अपने अधिकार के लिए लड़ने और सामाजिक कुरीतियों को अस्वीकार करने के लिए प्रेरित किया।

स्वर्णकुमारी देवी : अपने भाई रवीन्द्रनाथ टैगोर की तुलना में कम चर्चा में रहीं स्वर्णकुमारी देवी ने अपने उपन्यास में स्त्रियों की दासता के बारे में लिखा था। 1882 में उन्होंने महिला थियोसॉफिकल सोसायटी की स्थापना की। हालांकि बाद में थियोसॉफिकल सोसायटी का नाम एनी बेसेंट के साथ अधिक जुड़ गया। स्वर्णकुमारी ने आगे चलकर इंडियन नेशनल कांग्रेस की सदस्यता ले ली।

सरला देवी चौधरानी : स्वर्णकुमारी की बेटी सरला देवी विद्रोही गुट की थीं और उन्होंने महिलाओं को लाठी और तलवार चलाने का प्रशिक्षण दिया था। उन्हें पहली बार एक ऐसे महिला संगठन के निर्माण का श्रेय जाता है जो पूरे भारत को जोड़ता था। उनके पहले के जितने भी संगठन था उनकी प्रकृति स्थानीय ही थी। सरला देवी ने 1901 में भारत स्त्री महामंडल की स्थापना की थी।

पंडिता रमाबाई सरस्वती : पंडिता रमाबाई आजादी के पहले की प्रगतिशील महिला विचारकों में बड़ा नाम हैं। उनके पिता भी एक समाज सुधारक थे और उन्होंने अपनी पत्नी लक्ष्मीबाई को समाज के विरुद्ध जाकर शिक्षा दिलाई थी। ऐसा करने के कारण उन्हें समाज से बहिष्कृत भी कर दिया गया था। पंडिता रमाबाई ने 1886 में लिखी अपनी किताब 'दि हाई कास्ट हिन्दू वुमेन' में लिखा है कि बहिष्कार के कारण कैसे उनकी मां ने उन्हें जंगल में रहते हुए संस्कृत की शिक्षा दी। इस पुस्तक में रमाबाई ने उस समय में महिलाओं की निम्न स्थिति, धर्म और उपनिवेशवाद के बारे में लिखा था। उन्हें कई महिला संगठनों के गठन का श्रेय जाता है। वे स्वयं भी कांग्रेस की 10 महिला प्रतिनिधियों में एक थीं। उन्होंने शारदा सदन की स्थापना की जहां युवा विधवाओं को शिक्षा, प्रशिक्षण और रोजगार दिया जाता था।

लक्ष्मी सहगल : आजाद हिन्द गवर्नमेंट में महिला मामलों की मंत्री और इंडियन नेशनल आर्मी की ऑफिसर रहीं कैप्टन लक्ष्मी सहगल का नाम आज भी अदब और गर्व के साथ लिया जाता है। 1914 में जन्मीं लक्ष्मी सहगल स्वाधीनता संग्राम की वीर

सिपाहियों में थीं। इतिहास की कई वीरगाथाएं उनके नाम दर्ज हैं। 23 जुलाई 2012 को उनका निधन हो गया।

भीकाजी कामा : इंडियम होम रूल सोसायटी की स्थापना करने वालों में भीमाजी कामा का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने भारत की स्वाधीनता के प्रश्न को दुनिया के सामने रखा और अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ लोगों को आंदोलित किया। भीकाजी कामा अपने उग्र भाषणों तथा औरतों की समानता के संघर्ष के लिए जानी जाती हैं। 22 अगस्त 1907 को कामा ने जर्मनी के स्टुटगार्ट में इंटरनेशनल सोशल कांफ्रेंस में आजादी का पहला झंडा फहराया था।

सावित्रीबाई फुले : सावित्री बाई अंग्रेजी शासन के दौरान स्त्रियों की आजादी के लिए संघर्ष करने वाली प्रथम महिला के तौर पर जानी जाती हैं। अपने इस काम में समाज और जाति के प्रबल विरोध तथा अपमान के बाद भी उन्होंने हार नहीं मानी और औरतों को जागरूक करने का काम जारी रखा। 19 वीं सदी के मध्य और आखिर में सावित्री बाई के कामों ने उन्हें अमर बना दिया। अपने पति ज्योतिबा फुले के साथ मिलकर उन्होंने देश का पहला लड़कियों का स्कूल 1848 में पुणे के भिड़े वाड़ा में खोला। उन्होंने न केवल लड़कियों बल्कि अछूतों के समर्थन में भी लड़ाई लड़ी। उन्होंने अपना जीवन शिक्षा को समर्पित कर दिया था और उनकी मृत्यु भी प्लेग के दौरान मरीजों की सेवा करते–करते ही हुई।

सुचेता कृपलानी (मजूमदार) : आजाद भारत में वे देश की पहली महिला मुख्यमंत्री बनीं। 1963 से 1967 के बीच वे उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री बनीं। 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के समय वे स्वाधीनता संग्राम में प्रत्यक्ष रूप से शामिल हुईं और 1946–47 के दौरान हुई सांप्रदायिक हिंसा के दौरान उन्होंने बड़ी भूमिका निभाई। संविधान निर्माण के लिए बनी उपकमेटी की वे सदस्य भी थीं। 1940 में ऑल इंडिया महिला कांग्रेस की वे स्थापिका रहीं और इस तरह देश और औरतों के हित में लगातार सक्रिय रहीं।

प्रीतिलता वड्डादर : मई 1911 में जन्मीं प्री. तिलता विद्रोही गुट की थीं और उन्होंने अंग्रेजों के विरोध में कई उग्र प्रदर्शन किये। वे सूर्य सेन के नेतृत्व में आगे आईं और बाद में खुद 15 उग्रपंथियों का नेतृत्व किया। उन्होंने पहाड़टाली यूरोपीयन क्लब पर अपने दल के साथ हमला किया था जिसके साइन बोर्ड में लिखा था 'कुत्तों और भारतीयों को इजाजत नहीं'। उन्होंने उस क्लब को काफी नुकसान पहुंचाया हालांकि ब्रिटिश पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया। स्वाभिमानी प्रीतिलता को अंग्रेजों के हाथों गिरफ्तार होना स्वीकार नहीं था इसलिए उन्होंने 1932 में सायनाइड खाकर अपनी जान दे दी।

सरोजिनी नायडू : भारत की कोकिला नाम से ख्यात सरोजिनी नायडू एक समर्पित कवयित्री और सेनानी थीं जिन्होंने 1930 से 1934 के बीच सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया था। इस दौरान वे महात्मा गांधी के साथ कई बार जेल भी गईं। 1905 में बंगाल विभाजन के दौरान वे इंडियन नेशनल कांग्रेस में शामिल हुईं। आजादी के बाद वे देश की पहली महिला राज्यपाल बनीं। उनकी कविताएं आज भी अनमोल धरोहर हैं। अधीन भारत में प्लेग फैलने के दौरान उनके उल्लेखनीय कामों के लिए ब्रिटिश सरकार ने उन्हें कैसर–ए–हिन्द की उपाधि दी।

मतांगिनी हाजरा : अक्टूबर 1970 को जन्मीं हाजरा एक उग्रवादी थीं और उन्होंने देश की आजादी की लड़ाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। वे एक जनप्रिय नेता थीं और उन्हें प्यार से लोग 'गांधी बूढ़ी' के नाम से पुकारते थे। ब्रिटिश सरकार के खिलाफ काम करने के कारण 29 सितम्बर 1942 को उन्हें गोली मार दी गई थी।

उषा मेहता : भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान जब देश में राष्ट्रभक्ति की भावना लहर बनकर दौड़ रही थी तब उससे डर कर ब्रिटिश सरकार ने सभी खबरों के प्रसारण व प्रकाशन पर रोक लगा दी थी। उस समय उषा मेहता ने गुप्त रूप से रेडियो ट्रांसमीटर के जरिये लोगों तक सूचना पहुंचाने का काम किया था। जब उन्हें गिरफ्तार किया गया तो पुलिस ने उन्हें विदेश जाकर पढ़ाई करने का ऑफर दिया लेकिन उषा ने मना कर दिया और अंत तक अंग्रेजों को कोई गोपनीय बात नहीं बताई।

कल्पना दत्ता : 1913 को जन्मीं कल्पना भी एक उग्रवादी नेता के रूप में याद की जाती हैं। सूर्य सेन के साथ काम कर रहीं कल्पना ने चित्तगांव हथियार लूट में हिस्सा लिया था। 8 फरवरी 1995 में उनका निधन हो गया।

रोशनी बुझने न दी

" हममें से ज्यादातर पुरुष जेलों में थे। और तब एक बड़ी खास बात हुई। हमारी महिलाओं ने सामने आकर संघर्ष का मोर्चा संभाल लिया। निस्संदेह, औरतें हमेशा से हमारे साथ थीं लेकिन अब एक बड़ा तूफान आया था जिसने न केवल ब्रिटिश सरकार को बल्कि खुद उनके पुरुषों को भी विस्मय में डाल दिया था। उच्च और मध्यम वर्ग की, अपने घरों में आश्रित का जीवन जी रहीं, किसान महिलाएं, कामकाजी महिलाएं, गरीब और अमीर वे औरतें सरकार की दमनकारी नीतियों और लाठीचार्ज के विरोध में दस से लेकर हजार रुपये तक का दान दे रही थीं। " **(पं. जवाहरलाल नेहरू, डिस्कवरी ऑफ इंडिया)**

19वीं सदी में जो बेचैनी अपनी पहचान को लेकर थी वो बीसवीं सदी में सम्मान तक आ पहुंची। बाल विवाह, विधवा, सती, अशिक्षा और परदा प्रथा जैसी कुरीतियों ने तब की औरतों की पहचान को मिटा कर रख दिया था। उसे हासिल करने की जंग में कई नए विधान बने और पुरानी प्रथाएं धीरे–धीरे अपना वजूद खोने लगीं। बीसवी सदी में नई पीढ़ी की औरतों की चिंता अपने सम्मान को लेकर थी। उस समय आजादी के लिए जुनून हर वर्ग और उम्र में छाया हुआ था और महिलाएं भी उससे अछूती नहीं थीं, इसलिए उनके आंदोलनों का झुकाव भी नारीवाद से अधिक राष्ट्रवाद की ओर था। हालांकि गांधी जी ने तब भी स्त्रियों की समानता और पितृसता से आजादी के उनके संघर्ष को रुकने नहीं दिया और अपने हर आंदोलन में उन्हें कदम से कदम मिला कर चलने को प्रेरित किया। उन्होंने 1920 के सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय ही महिलाओं से साथ चलने का आह्वान किया। 1930 के नमक सत्याग्रह के दौरान उन्हें इस बात का पूर्ण अहसास हो गया कि महिलाओं की भागीदारी के बिना स्वाधीनता की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। हालांकि तब भी औरतों के लिए घर से बाहर निकलकर जंग–ए–आजादी में शामिल होना आसान नहीं था। नागरिक अवज्ञा आंदोलन के बारे में गांधी जी ने लिखा था " भारत की महिलाओं ने अपने 'परदे' फाड़ डाले और देश के लिए आगे आईं। उन्होंने देखा कि देश उनसे घरों की देखभाल करने से भी अधिक कुछ और मांग रहा है..... ।"

आजादी की लड़ाई में जिन महिलाओं ने अपनी महती भूमिका निभाई उनमें सरोजिनी गांधी, लाडो रानी जुत्शी, रानी गुडियालो, कमला नेहरू, कस्तूरबा गांधी, हंसा मेहता, अनंतिकाबाई गोखले, सत्यवती, पार्वतीबाई, रुक्मिणी लक्ष्मीपति, दुर्गाबाई देशमुख और कमलादेवी चट्टोपाध्याय के अलावा कई स्त्रियां शामिल रहीं।

Source : https://in.pinterest.com

महिला आंदोलन

आजादी के पूर्व और पश्चात्

1 मानवाधिकार / मौलिक अधिकार

आजादी के पहले महिलाओं की लड़ाई मुख्य रूप से मनुष्य के रूप में मिले उनके अधिकारों को पाने की रही। सती प्रथा का उन्मूलन, बाल विवाह पर रोक तथा विधवा विवाह जैसे मुद्दे तब बड़े थे। लेकिन आजादी के बाद उनकी लड़ाई मौलिक अधिकारों को पाने की ज्यादा रही और अब वे महिला शिक्षा, समान कार्य, समान वेतन तथा वोट देने के अधिकार जैसे मुद्दों को लेकर सामने आईं।

2 स्थानीय / वैश्विक

आजादी के पहले महिलाओं की लड़ाई का स्वरूप स्थानीय था जबकि आजादी के बाद के वर्षों में यह अधिक वैश्विक हो गया। दुनिया के किसी भी हिस्से में महिलाओं पर होने वाले अत्याचार के विरोध की गूंज पूरी दुनिया में सुनाई देने लगी। तकनीकी और सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव ने आजादी बाद के आंदोलनों को ग्लोबल बना दिया और महिलाओं को विरोध का नया मंच दे दिया।

3 अस्वीकार्यता / स्वीकार्यता

पहले औरतें अपनी पीड़ा के बारे में खुलकर सार्वजनिक रूप से नहीं बोल पाती थीं क्योंकि समाज में उनकी स्वीकार्यता ही नहीं थी। उनकी समस्याओं को समस्या समझा ही नहीं जाता था। अब सोच बदली है और महिलाएं अपने पर होने वाले शोषण के खिलाफ न केवल बोलती हैं बल्कि हर मंच पर अपनी आवाज बुलंद करती हैं।

अमृत कौर

मुथुलक्ष्मी रेड्डी

अरुणा आसिफ अली

सरोजिनी नायडू

1930 के नमक सत्याग्रह ने आजादी की लड़ाई में महिलाओं की भूमिका को अत्यधिक महत्वपूर्ण बना दिया। घरों से यदा–कदा और वो भी अपने संरक्षकों के साथ बाहर निकलने वाली महिलाएं अब आसानी से शराब की दुकानों को बंद कराने और विदेशी कपड़ों के बहिष्कार के स्थलों पर नजर आने लगीं। बंबई की मिठ्ठूबेन पेटीट, दरबार गोपालदास की पत्नी भक्तिबा, सरदार वल्लभभाई पटेल की बेटी मणिबेन पटेल, शारदाबेन शाह और शारदा मेहता जैसी स्त्रियों ने इसमें नेत्री की भूमिका निभाई। उस समय महिलाओं की शक्ति को देखकर गांधी ने कहा था '' महिलाओं को कमजोर बताना शर्मनाक है। यह पुरुषों द्वारा उनके प्रति किया गया अन्याय है।'' उस दौर में देश सेविका संघ, नारी सत्याग्रह समिति, महिला राष्ट्रीय संघ, लेडिज पिकेटिंग बोर्ड, स्त्री स्वराज्य संघ और स्वयं सेविका संघ जैसे नारीवादी संगठन हर जगह नजर आने लगे। इन सबमें एआईडब्ल्यूसी का काम अधिक प्रभावशाली रहा और उसके प्रयासों से कालांतर में भी कई सुधारवादी अधिनियम पारित कराए जा सके। उनमें 1929 का शारदा एक्ट, विशेष विवाह अधिनियम, 1954, हिन्दू विवाह एवं तलाक अधिनियम, 1955, हिन्दू माइनॉरिटी और गार्जियनशिप एक्ट, 1956 तथा हिन्दू दत्तक एवं देखभाल अधिनियम, 1956 जैसे कानून प्रमुख रहे।

भारतीय स्त्रियों के पुनर्जागरण में विदेशी महिलाओं का योगदान

मेडेलिन स्लेड और कैथरीन मैरी हेलमेन यानी मीराबेन और सरलाब.न, दो ऐसी स्त्रियां थीं जिन्होंने स्वाधीनता संग्राम के दौरान लोगों और विशेषकर महिलाओं के जागरण के लिए दिन–रात काम किया था। बापू की अंग्रेजी बेटियों के नाम से ख्यात इन दोनों औरतों ने अपना पूरा जीवन भारतीय जनमानस के बीच होम कर दिया था। उनकी तरह ही कई और ऐसी महिलाएं रहीं जिन्होंने अपनी मातृभूमि को छोड़कर भारत में काम करना स्वीकार किया था और जिनकी सोच व जीवन शैली का भारतीय महिलाओं पर बड़ा असर पड़ा था। मीराबेन उर्फ मेडेलिन स्लेड गांधी के अभियानों के बारे में विश्व मीडिया को प्रेस विज्ञप्ति भेजा करती थीं जिसके लिए उन्हें ब्रिटिश सरकार की ओर से धमकी भी मिली थी। उन्हें सरकारी आज्ञा का उल्लंघन कर बॉम्बे में प्रवेश करने पर गिरफ्तार कर लिया गया था। इसी तरह सरलाबेन ने गांव–गांव जाकर राजनीतिक कैदियों के परिवार से मुलाकात की थी।

आयरिश महिला एनी बेसेंट भारत में थियोसॉफिकल सोसायटी का बड़ा नाम बनीं। 1914 में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सदस्यता ले ली और 18 दिसम्बर, 1917 को बाल गंगाधर तिलक के साथ मिलकर मांटेग्यू को एक मेमोरियल सौंपा जिसमें महिलाओं को राजनीतिक मामलों में बराबरी का अधिकार दिया गया। सिस्टर निवेदिता भी उन विदेशी महिलाओं में शामिल रहीं जिन्होंने भारत को अपना कर्मक्षेत्र बनाया। स्वामी विवेकानन्द से प्रेरित सिस्टर निवेदिता भारत को महान महिलाओं का देश मानती थीं। उनका कहना था कि भारतीय महिलाओं को अपने राष्ट्र के लिए ज्यादा व्यापक सोच और प्यार विकसित करने की जरूरत है ताकि वे भी पुरुषों के साथ मिलकर मुक्त और मजबूत राष्ट्र निर्माण के लिए काम कर सकें।

4 एकाकी प्रयास/समवेत अभियान

आजादी के पूर्व के चलाए गए अभियान मुख्य रूप से एकाकी प्रयास होते थे। समाज के कुछ चुनिंदा सुधारकों राजा राम मोहन राय, दयानंद सरस्वती, ज्योतिबा फुले और एम.जी.राणाडे जैसे लोगों ने अपने दम पर समाज में महिलाओं की स्थिति में बदलाव लाने की कोशिश की थी। उन्हें समाज का बड़ा सहयोग नहीं मिल सका था। आजादी के बाद चलाए गए नारीवादी आंदोलन ज्यादा संगठित होने लगे। उन्हें गैरसरकारी और सरकारी संगठनों का साथ मिलने लगा और अब वे अभियान के रूप में सामने आने लगे।

5 पहचान/सम्मान

आजादी के पहले भारतीय महिलाओं का सबसे बड़ा संकट पहचान पाने का था। समाज में उनकी हैसियत केवल घर संभालने वाली तक ही सीमित थी। किसी पद, कला या उद्योग में पहचान बनाने वाली महिलाओं की गिनती अंगुलियों पर थी। इसके उलट परंपरा के नाम पर स्त्रियों का शोषण करने वाली कुप्रथाओं की गिनती लम्बी थी। स्त्रियों की अनुमति के बिना उन्हें सती बना देना, विवाह कर देना या विद्यालय न भेजना आम था। आजादी मिलने के बाद औरतों ने सबसे पहले अपने सम्मान के लिए लड़ाई छेड़ी। पूर्व के आंदोलनों से प्राप्त आंशिक सफलताओं का लाभ उन्हें अब के आंदोलनों में मिला। आजादी के बाद के उनके आंदोलन वोटिंग, रोजगार और सेक्स के अधिकार जैसे मुद्दों तक पहुंच गए। उनके मांग पत्रों में संसाधनों में समान सहभागिता और अवसरों की समानता जैसी चीजें शामिल होने लगीं। समान वेतन और घरेलू कार्यों को भी सवैतनिक बनाने जैसी मांगों को भी मान्यता मिली।

विकास की जेंडरवादी समालोचना

मैत्रेयी कृष्णराज

(पूर्व निदेशक, रिसर्च सेंटर फॉर वीमेन्स स्टडीज, एसएनडीटी वीमेन्स यूनिवर्सिटी, मुंबई। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और कई किताबों की लेखिका)

'विकसित' शब्द जैविकीय रूप से वयस्कता की अवस्था को बताता है। यह इस बात की ओर भी संकेत करता है कि वे सभी देश जो यूरोप, उत्तरी अमेरिका और जापान के जैसे नहीं हैं, कमजोर हैं और उन्हें विकास करने की जरूरत है। दूसरे शब्दों में विकास को श्रेणियों पर आधारित इच्छित अवस्था को पाना है। हालांकि विकास का सर्वव्यापी लक्ष्य गरीबी को मिटाना और उत्पादकता को बढ़ाना ही है और इसके लिए आर्थिक रूप से उन्नत देशों ने औद्योगिकीकरण तथा तकनीक को जरिया बनाया है।

वास्तविक विकास के लिए कई बड़े बदलावों की जरूरत होती है, जहां विश्व की बड़ी शक्तियों को गरीब देशों के पक्ष में अपनी ताकत को शिफ्ट करना पड़ता है ताकि उनके लोगों की जीवन शैली सुधारने के लिए विकास की प्राथमिकताओं को लागू किया जा सके। सवाल है कि प्राथमिकताओं को तय कौन करता है? हम जनमत तक पहुंचते कैसे हैं? बदलाव को लाने और उन्हें रोकने का अधिकार किसे है? पुरस्कार देने का हक किसको है? चूंकि ये सभी परिवर्तन राजनीतिक प्रक्रियाओं से संचालित हैं और इस पर बहुत कम लोगों का नियंत्रण होता है इसलिए बहुत कम लोगों का ही पर्यावरण और संसाधनों पर भी नियंत्रण हो पाता है।

विकासशील क्या होता है? ये कमजोर और शक्तिहीन होते हैं। अशिक्षा, बेरोजगारी, उत्पादक संपत्ति की कमी, संसाधनों पर नियंत्रण का अभाव, ज्ञान की कमी और ऐसी ही अन्य चीजें शक्तिहीनता को बढ़ाती हैं। ऐसी स्थिति में गरीब और खासकर महिलाओं का शोषण सक्षम संसाधनों द्वारा किया जाता है क्योंकि महिलाओं में भी विकासहीनता के उपरोक्त सभी लक्षण मिल ही हैं। जेंडर के आधार पर किये जाने वाले भेदभाव से अमीर या मध्यवर्ग किसी भी वर्ग की औरतें नहीं बच पाती हैं। ऐसी कई चुनौतियां हैं जो उन्हें सहनी पड़ती हैं, कार्यस्थल पर यौन प्रताड़ना, घरेलू हिंसा, संपत्ति पर असमान अधिकार, बेटे की चाहत वाले समाज में बेटियों को जीने का भी अधिकार न होना और ऐसी ही कितनी चुनौतियां उनके सामने होती हैं।

अगर विकास का तात्पर्य सभी मनुष्यों को समान अवसर उपलब्ध कराना है तो औरतों को भी अवसर जरूर मिलने चाहिए। अध्ययनों में ये बताया जा चुका है कि एशिया से लेकर अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका तक औरतें भेदभाव का शिकार होती हैं। तो विकास की प्रक्रिया में ये कैसे हो जाता है? इसके पीछे दो मुख्य ट्रेंड देखे गये हैं– 1. जीवित रहने के लिए जरूरी हर क्षेत्र में महिलाओं के लिए अवसरों में भेदभाव और 2. समाज में हो रहे परिवर्तनों के कारण उत्पन्न हो रहे दमन और अधीनता के नये स्वरूप। तो विकास की प्रक्रिया इन प्रभावों को उत्पन्न कैसे करती है? संघर्ष और प्रतियोगिता विकास की प्रक्रिया के साथ–साथ अनिवार्य रूप से चलते हैं? वो कौन सी अव्यक्त प्रक्रियाएं हैं जो औरतों के संघर्ष को और तीव्र बना देती हैं?

दरअसल महिलाएं समाज के उस शोषण भरे तंत्र से बंधी हुई हैं जिसकी शुरुआत विकास के मॉडल से होती है। योजनाबद्ध तरीके से काम करने के बाद भी यह मॉडल न केवल गरीबी को दूर करने में नाकाम रहा है बल्कि इसने दोहरी अर्थव्यवस्था को जन्म दे दिया है। औरतों को परंपरागत व्यवसायों से दूर कर दिया गया है, उनकी दक्षता समाप्त कर दी गई है और वे एक सेविका बन कर रह गई हैं। पलायन कर शहरों में आने वाली औरतें सुरक्षित नहीं हैं और उनकी स्वायत्तता तथा आत्म सम्मान खो चुका है। बांधों और बड़ी परियोजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण किये जाने के दौरान लोगों के पलायन से जुड़े कई अध्ययन हो चुके हैं। ऐसे देश में जो पर्यावरण से गहरे तक जुड़ा हो, इसका प्रभाव अनिवार्य रूप से पड़ता ही है। व्यावसायिक हितों के कारण वनों को नुकसान पहुंचाया जाता है जिससे ईंधन, चारा, पानी आदि की उपलब्धता कम हो जाती है। ऐसे में औरतों को इन्हें इकट्ठा करने के लिए कहीं अधिक दूरी तय करनी पड़ती है। सामाजिकता, विवाह की प्रथा तथा पैतृक आवास की महत्ता पितृसत्ता को बनाए रखते हैं। ससुराल में दुल्हन की स्थिति विषम बनी रहती है क्योंकि दुल्हन को पाने वालों की स्थिति उसे देने वाले से अधिक शक्तिशाली मानी जाती है। दहेज और उससे जुड़ी हुई हिंसा दमन की ऐसी खतरनाक परिस्थिति को पैदा करती है जो कई बार महिला की हत्या तक पहुंच जाती है। जेंडर आधारित

संबंधों को निर्धारित करती इस जटिल संरचना को विकास का मॉडल भी कमजोर नहीं कर पाता है। तिस पर जाति की राजनीति और व्यवधान पैदा कर देती है।

औरतों को सत्ता और शक्ति हस्तांतरित नहीं किये जाने के कारण रोजगार में उनकी सहभागिता पर असर पड़ा है। व्यावसायिक संरचना को बदल कर रख देने वाली तकनीकी क्रांति ने पुरुषों को फायदा पहुंचाया जबकि औरतें कला, घरेलू उद्योग और कृषि जैसे क्षेत्रों तक सिमट कर रह गईं। सेक्स पर आधारित श्रम विभाजन ने इस विषमता को और बढ़ा दिया। औरतें परिवार में पहले से निर्धारित अपने स्थान और कार्य को स्वीकार करती हैं। उनका काम मुख्य रूप से परिवार को बचाए और बनाए रखना है न कि उनकी स्वयं की तरक्की। यूएन ने महिलाओं के कामों की गणना कर बताया है कि उन पर काम का भारी दवाब रहता है लेकिन ज्यादातर अवैतनिकत होते हैं। हमें देखना होगा कि जो उत्पादन हो रहा है क्या वो समाज कल्याण और महिलाओं के स्वास्थ्य को और बेहतर बना पा रहा है। मध्य वर्ग की बढ़ती संख्या के साथ ही समाज में 'व्हाइट गुड्स' 'वेज गुड्स' पर भारी पड़ेगा।

तो कौन सा विकास औरतों की सेहत और समाज के कल्याण को बढ़ाएगा?

- इसे रैखिक प्रक्रिया की तरह नहीं होना चाहिए
- संसाधनों और तकनीकी सेवाओं के लिए उपयुक्त सामाजिक संगठन होने चाहिए
- संस्थाओं का निर्माण प्राथमिकता होनी चाहिए
- शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएं सभी को मिलनी चाहिए
- एक गैर रैखिक मॉडल केवल भौतिक मूल्यों की ही नहीं मानवीय मूल्यों पर भी जोर देगा
- विकास का ऐसा मॉडल जो काम, जीवन और क्रियाशीलता पर हावी नहीं होगा
- वर्तमान मॉडल से हटकर, जिसका अंग गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम भी है, एक अलग गरीबी विरोधी कार्यक्रम बनाया जाए
- औरतों और गरीबों के लिए क्षतिपूर्ति की योजनाओं को बनाने के बदले अधीनता के कारकों को जड़ से मिटाना होग

मैक्रो थ्योरी जेंडर पर ध्यान क्यों नहीं देती?

- मैक्रो थ्योरी उत्पादन के वितरण और उसकी कीमत का अंदाजा पहले लगाती है और उसके बाद असल उत्पादन तथा कीमत का निर्धारण करती है।
- माइक्रो थ्योरी असल उत्पादन तथा कीमत का अंदाजा पहले लगाती है और उसके बाद वितरण तथा कीमत का अंदाजा लगाती है।
- चूंकि मैक्रो थ्योरी संपूर्णता को ध्यान में रखती है इसलिए यह जेंडर, वर्ग और स्थान को नहीं देखती।
- सिद्धांत बताते हैं कि मांग और पूर्ति वेतन का निर्धारण करते हैं तथा नियोक्ता की नजर में कामगार के महत्व के आधार पर उसका वेतन घटता–बढ़ता है। ऐसे में महिलाओं को कम वेतन दिया जाता है क्योंकि उनकी उत्पादकता को पुरुषों के मुकाबले कम आंका जाता है।
- बाजार में सशरीर मौजूदगी की अनिवार्यता ने महिलाओं को नुकसान पहुंचाया है।
- सामाजिक सोच औरतों को परिवार का काम करने के प्रति जिम्मेदार बताती है।
- सिद्धांतों के मुताबिक, बाजार श्रम का चुनाव प्रतिस्पर्द्धी उपयोगिता के आधार पर करता है लेकिन यह केवल उन पर ही लागू हो सकता है जिनकी गतिविधियां बाजार आधारित हों।
- घरेलू संसाधनों के जेंडर पर आधारित वितरण के बारे में अर्थशास्त्र नहीं बताता है।
- उत्पादन का संबंध केवल बाजार से जोड़ने से सिद्धांत में समाज की अन्य आर्थिक गतिविधियों की उपेक्षा की गई है।
- महिला श्रमिकों के लिए अवसरों के मूल्य की उपेक्षा की गई है। जब औरत श्रम बाजार में आती है तो इससे बच्चों की देखभाल पर जबर्दस्त असर पड़ता है।
- अर्थशास्त्र उत्पादन करने वाले संस्थागत संदर्भों की भी उपेक्षा करता है। यह सभी को एक समान रूप से आंकता है।
- पर्यावरण को दिया हुआ मान लिया जाता है। अभाव को समाज के भीतर ही उत्पन्न कर दिया जाता है। गांधी जी ने भी कहा था कि ''प्रकृति सबकी जरूरतों को पूरा कर सकती है, लालच को नहीं।''

पाकिस्तान निर्माण में महिलाओं का योगदान

साधारण औरतें, असाधारण कार्य

जाहिदा मुश्ताक : 1935 में सियालकोट में जन्मीं जाहिदा मुश्ताक उन असाधारण औरतों में शामिल रहीं जिन्होंने बंटवारे के समय पाकिस्तान को आकार देने में महती भूमिका निभाई। जाहिदा को आजादी की लड़ाई के दौरान भी प्रदर्शनों में शामिल होने का थोड़ा अनुभव था। वे और उनकी बड़ी बहन शमीम ने लाहौर में सचिवालय पर पाकिस्तान का झंडा फहराने में कामयाबी पाई थी। हालांकि ऐसा करने के तुरंत बाद दोनों को ब्रिटिश पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था। उन दिनों मुस्लिम औरतों को प्रदर्शन करने से रोका नहीं जाता था बल्कि जब वे बाहर निकलतीं तो पुरुष उनके लिए सुरक्षा घेरा तैयार करते थे।

खुर्शीद नियाजी : मियांवाली में 1922 में जन्मीं खुर्शीद नियाजी आठ वर्षों तक गर्ल गाइड एसोसिएशन से जुड़ी रही थीं। विभाजन के समय जब उन्हें पता चला कि उन्हें अपने मोहल्ले, दोस्तों और देश को छोड़कर जाना होगा तो वे खुद को संभाल नहीं पाईं। उन दिनों अंबाला में औरतें बहुत सक्रिय थीं। फातिमा जिन्ना ने नई जगह पर उनका साथ दिया और बताया कि उन्हें कहां रुकना है, किसी स्कूल में या मस्जिद में। उन्हें बताया गया कि पाकिस्तान अब उनका नया देश होगा और ये भी कि उसे कैसे बनाना है। खुर्शीद का मानना था कि अगर उस समय औरतों ने साथ नहीं दिया होता तो पाकिस्तान का नवनिर्माण भी नहीं होता। औरतें घर से बाहर निकलीं और मर्दों ने उनका साथ दिया।

शौकत आरा : डॉक्टर की बेटी शौकत आरा का जन्म लाहौर में 1926 में हुआ था और आजादी मिलने तक उन्होंने उसका मतलब भी अच्छी तरह समझ लिया था। मुस्लिम लीग के सदस्य के तौर पर वे समाज में काफी सक्रिय भी थीं। जब भारत और पाकिस्तान दो देश बने उस समय शौकत आरा लाहौर के वाल्टन में कार्यकर्ता के तौर पर काम कर रहीं थीं। उन दिनों का मंजर याद कर शौकत की रूह कांप जाती हैं। वो बताती हैं कि एक ट्रेन ऐसी होती थी जो किसी स्टेशन पर नहीं रुकती थी और सीधे वाल्टन तक आती थी। उस ट्रेन के डिब्बों में कटे हुए मानव अंगों और लाशों के नीचे छिपे होते थे बुरी तरह जख्मी लोग जिनमें कई बच्चे भी होते थे। उन्हें देखकर स्टेशन पर काम कर रहीं शौकत और उनके साथी सिहर उठते थे। वे लोग दिन–रात लगकर उन घायलों का प्राथमिक उपचार करते थे।

खालिदा चुगताई : खालिदा भी उन हजारों महिलाओं में थीं जिन्होंने पाकिस्तान के निर्माण के लिए आवाज उठाई थी। गुरदासपुर में 1926 में उनका जन्म हुआ था और मुस्लिम लीग के प्रभाव में थीं। वे इस्लामिया कॉलेज फॉर वुमेन की छात्रा थीं और इस दौरान ही कई आंदोलनों में हिस्सा लिया था। विभाजन के समय उन्हें लाहौर रेलवे स्टेशन पर कार्यकर्ता के रूप में लगाया गया था। जब ट्रेन आती तो उसके अंदर का माहौल देखकर वे स्तब्ध रह जातीं। उन्होंने देखा कि लाशों और खून के बीच एक बच्ची अपनी मां को किसी तरह बाहर निकालने में लगी है। वे उस बच्ची को लेकर अपने घर गईं और घर के बरामदे को ऐसे बच्चों और महिलाओं के लिए खाली करवा दिया ताकि उनका उपचार हो सके।

(यह आलेख 17 अगस्त, 2014 में 'डॉन, संडे मैगजीन' में प्रकाशित आलेख का अंश है।)

27 अगस्त, 1970 को अमेरिका में नेशनल ऑर्गेनाइजेशन फॉर वुमेन ने समानता के लिए हड़ताल का आयोजन किया था जो महिलाओं के मताधिकार से जुड़े 19वें संविधान संशोधन के 50 साल पूरे होने पर किया गया था। संगठन की पूर्व अध्यक्ष बेट्टी फ्रीडेन ने इस हड़ताल को यौन प्रताड़ना के खिलाफ त्वरित क्रांति की संज्ञा दी थी।

पूरी दुनिया में जागा स्त्रीवाद

सीमाओं को पार कर वैश्विक स्तर पर शुरू हुई स्त्रियों के अधिकार की लड़ाई को संयुक्त राष्ट्र ने दिशा प्रदान की। यूएन ने उनके संघर्ष को मानवाधिकार की जंग से जोड़कर मान्यता दी। महिलाओं को संयुक्त राष्ट्र के चार वर्ल्ड कांफ्रेंस से लाभ मिला जो 1975, 1980, 1985 और 1995 में लाए गए। वैश्विक स्तर पर संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों को स्थानीय स्तर पर स्वयंसेवी संगठनों का साथ मिला जिन्होंने लक्ष्य निर्धारित करने, योजना बनाने और उन तक पहुंचने के उनके रास्तों को सुगम बनाया। संयुक्त राष्ट्र के 'कन्वेंशन ऑन द एलिमिनेशन ऑफ ऑल फॉर्म्स ऑफ डिस्क्रिमिनेशन अगेंट वीमेन' (सीईडीएडब्ल्यू) ने ज्यादातर देशों में महिला आंदोलनों को आधार प्रदान कर दिया।

देश को आजाद कराने का जुनून थम गया था और उसके साथ चल रहे महिला आंदोलनों का दौर भी खत्म होने को था। ऐसे में बनती जा रही शून्यता को समाप्त करने के लिए एआईडब्ल्यूसी ने खुद को एक राजनीतिक संस्था से सामाजिक संस्था में तब्दील कर लिया था। संविधान में भी महिलाओं को संसाधनों और अवसरों में समानता का अधिकार दे दिया गया था। शुरुआती 15 वर्ष बुरे अतीत को विदा करने और अच्छे भविष्य के इंतजार में कट गए लेकिन उसके बाद असंतोष का ऐसा गुबार फूटा जिसने एक बार फिर न केवल नारीवादी आंदोलनों को पुनर्जीवित कर दिया बल्कि किसानों, मध्यम वर्ग, दलितों, मजदूरों और कई अन्य वर्गों को सड़कों पर उतरने के लिए उद्वेलित कर दिया। लोगों की बेहतरी के लिए किये गये वादे पूरे नहीं हो सके थे जिसके परिणामस्वरूप कई नई पार्टियों का उदय हुआ और महिला आंदोलन भी कमोबेश उन पार्टियों का हिस्सा बन गए। ये वो दौर था जब पूरी दुनिया में महिलाएं अपने अधिकारों को लेकर नई सतर्कता और तैयारी के साथ उतर रही थीं। ब्राजील से लेकर अमेरिका और आस्ट्रेलिया से लेकर नाइजीरिया तक औरतें अपने सम्मान और पहचान के लिए लड़ रही थीं।

अमेरिका : आधिकारिक रूप से स्त्रियों का आंदोलन यहां 1848 में माना जा सकता है जब सेनेका फॉल्स वुमेन कन्वेंशन में महिलाओं को वयस्कों के अधिकार प्रदान करने तथा उन्हें व्यवसाय अपनाने और वोट देने का अधिकार देने का प्रस्ताव पास किया गया। कन्वेंशन के प्रतिनिधियों में ख्यात ब्लैक क्रांतिकारी फ्रेडरिक डगलस और एलिजाबेथ कैडी स्टैन्टॉन के अलावा मध्य वर्ग, गोरे लोग,

नारीवादियों ने इस बात पर पूरा जोर दिया कि औरतों को भी वोट देने का समान हक प्राप्त होना चाहिए। औरतों की पीड़ा को लेकर चलाये गये इस आंदोलन के शिथिल होते–होते तक '70 के दशक में एक नए रूप में इसे सामने लाया गया। अमेरिकी संविधान में सुधार को लेकर चलाया गया समान अधिकार संशोधन अभियान हालांकि पूरी तरह सफल नहीं हो सका। शुरुआती आंदोलनों की वजह से ही 1920 में यहां औरतों को मताधिकार प्राप्त हो गया। 1960 में अफ्रीकी अमेरिकियों के लिए सिविल राइट्स की लड़ाई शुरू हुई और अंततः 1964 में सिविल राइट्स एक्ट के द्वारा जेंडर को लेकर भेदभाव को समाप्त कर दिया गया। 60 और 70 के दशक में नारी मुक्ति के अभियानों में भाग लेने वाली युवा महिलाओं में ज्यादातर गारी महिलाएं थीं फिर भी नस्लवाद को उन्होंने बड़ा मुद्दा माना था। मुख्यधारा के महिला संगठन यथा नेशनल आर्गेनाइजेशन फॉर वीमेन (नाउ) तथा अन्य की खूबी थी कि वे किसी भी राजनीतिक दल से स्वतंत्र थे। उनके अपने स्वतंत्र एजेंडा की वजह से महिला मुक्ति अभियानों एवं अन्य सामाजिक अभियानों में अक्सर विवाद भी हो जाया करते थे। जैसे कि रंगभेद, लेस्बियन और कामक. ाजी महिला संगठनों के अपने अलग मुद्दे थे और उनमें विवाद आम थे। इनमें से एक था वेलफेयर राइट्स मूवमेंट जिसने निम्न आय वाली महिलाओं की मदद के लिए कोएलिशन ऑफ लेबर यूनियन वीमेन बनाया और उन्हें उनका अधिकार दिलाया।

ब्राजील : 1964 से 1985 के बीच ब्राजील ने लैटिन अमेरिका के क्रूर शासकों और अत्यंत गरीबी के बीच सबसे लंबे, विविधताओं वाले, उग्र और सफलतम महिला आंदोलनों को भी देखा था। इन आंदोलनों को सफलता मुख्य रूप से रणनीतिक तथा व्यावहारिक तरीके को अपनाने के कारण मिली थी। जेंडर के आधार पर श्रम विभाजन, अपने उत्पादों पर अपना नियंत्रण तथा वैधानिक एवं राजनीतिक समानता वे रणनीतिक कारक थे जिन्होंने महिलाओं के आंदोलनों को आकार दिया। इसी प्रकार स्वास्थ्य, पोषण, आश्रय, पानी एवं जीविका के अन्य साधनों को लेकर चलाए गए व्यावहारिक अभियानों ने उनके आंदोलनों को जीवित रखा। 'मदर्स क्लब' ने बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, भोजन और आवास के लिए अपना आंदोलन चलाया तो वहीं मध्यवर्गीय पढ़ी–लिखी युवा महिलाओं ने आर्थिक भेदभाव और कामकाजी महिलाओं के समर्थन में अपना अभियान खड़ा किया। हालांकि इसी दौरान कई महिला संगठनों ने उग्र रूप अख्तियार कर लिया और वे दूसरे संगठनों के लिए छतरी का काम करने लगे। नारीवादियों ने जन्म देने के अधिकार, घरेलू हिंसा, सेक्स और परिवार को लेकर संघर्ष छेड़ा। 1985 में तानाशाही का अंत होने के बाद ब्राजील में नारीवाद विरोधी अभियान तेजी से बढ़ने लगे। हालांकि इसके बाद भी महिला आंदोलनों की रफ्तार कम नहीं हुई।

नाइजीरिया : अफ्रिका के महिला संगठनों के सामने सबसे बड़ी समस्या यह तय करने की थी कि वे सरकार या किसी राजनीतिक दल से मान्यता लें अथवा खुद की स्वायत्त संस्था स्थापित करें। उपनिवेशवाद के बाद राज्य निर्माण के काल में महिलाओं के आंदोलन को अक्सर राजनीतिक दलों पर आश्रित और सरकार द्वारा सहयोग प्राप्त संस्था माना जाता था। ऐसे में स्वायत्त संस्थाएं, जैसे कि वुमेन इन नाइजीरिया (WIN) वीमेन्स नेशनल कोएलिशन (WNC) और एक्शन फॉर

डेवलपमेंट तथा अली मारी ट्रिप, ने स्वीकारा कि स्वायत्त होने की वजह से उनके लिए हर समुदाय के साथ काम करना आसान हो पाया। इसकी वजह से ही उनकी स्वीकार्यता बढ़ी और उनका प्रभाव व्यापक स्तर पर बन पाया। 1884 में जब ब्रिटिश सरकार ने उन पर अपना आधिपत्य कायम किया, उससे पहले दक्षिण नाइजीरिया के योरूबा और इग्बो समुदायों में महिलाएं राजनीति में मजबूत पदों पर थीं और वहां महिला एवं पुरुष दोनों का समान प्रभाव कायम था। 1929 का वुमेन्स वार अपने आप में बेहद खास है क्योंकि ये वो युद्ध था जब महिलाओं ने इग्बो बाजार में ब्रिटिशों द्वारा लगाए गए टैक्स का विरोध किया था। उपनिवेश बनने के पूर्व नाइजीरिया में महिलाओं के संगठन सामुदायिक समूहों के भीतर ही बनाए जाते थे। 1947 में आजादी की लड़ाई के दौरान पहले राष्ट्रीय महिला संगठन की स्थापना हुई, नेशनल वुमेन यूनियन, जिसकी प्रमुख फुनीमिलायो रैनसॉम कुटी थीं। 1960 में आजादी मिलने तक ज्यादातर महिला संगठन किसी न किसी पीढ़ीगत या धार्मिक समूह से जुड़े हुए थे।

कनाडा : कनाडा ने अपनी पहचान कई देशों की विविधताओं के साथ बनाई है। ऐसे में यहां के महिला संगठन एक–दूसरे की भिन्नताओं से उपजे समस्याओं को दूर करने के साथ ही अपने अधिकारों के लिए सरकार पर दबाव बनाते रहे। फ्रेंच बोलने वाले कनाडाई की अंग्रेजी और मूल भाषा बोलने वाले कनाडाई के साथ होने वाली परेशानियों का हल निकालने के साथ–साथ वे राष्ट्र स्तर पर छतरी संगठनों का निर्माण भी कर पाईं। अंग्रेजी भाषाई कनाडा में महिलाओं ने गर्भावस्था के अधिकारों, शिक्षा और आर्थिक आजादी के लिए कई काम किए। नेली मैक–क्लंग और अन्य नारीवादियों ने, जो मुख्य रूप से मध्य वर्ग से आते थे, महिलाओं को राष्ट्रमाता के तौर पर देखे जाने के आधार पर उनके अधिकारों के बारे में संघर्ष की शुरुआत की। डॉ. एमिली होवॉर्ड और फ्लोरा मैकडोनाल्ड ने महिलाओं को भी पुरुषों के समान अधिकार मिलने के लिए आंदोलन छेड़ा। इसी तरह कामकाजी महिलाओं के संगठन वीमेन्स लेबर लीग ने कार्यस्थलों पर महिलाओं के लिए सुविधाएं बढ़ाने और उनके लिए बेहतर माहौल बनाने की मांग रखी। कनाडा के अंग्रेजी भाषाई इलाकों में 1918 में औरतों को वोट देने का अधिकार दे दिया गया।

आधा आसमान हमारा

पिछले 50 साल में हमारे देश के नारीवादी आंदोलनों ने 5000 साल से जड़ जमाए पितृसत्ता को चुनौती देने की कोशिश की है। दमन, शोषण और औरतों को दोयम दर्जा देने की परंपरा पर हमला कर, सार्वजनिक और निजी जीवन में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उनके खिलाफ होने वाली हिंसा को उजागर कर, परिवार में पुरुषों की हुकूमत पर सवाल उठाकर, उत्तराधिकार पर, धर्म, मीडिया और राज्य के संगठन पर प्रश्न खड़े कर इन्होंने चुनौतियों का सामना किया है।

प्रो. विभूति पटेल

(पीएचडी अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र विभाग प्रमुख, एसएनडीटी वीमेंस यूनिवर्सिटी, मुंबई तथा डायरेक्टर, सेंटर फॉर स्टडी ऑफ सोशल एक्सक्लूजन एंड इनक्लूजन पॉलिसी)

भूमिका

देश में पहले लहर के नारीवाद को उच्च जाति की महिलाओं द्वारा चिह्नित–वर्णित कहा जा सकता है। अंग्रेजी पढ़ी–लिखी महिलाओं द्वारा बाल विवाह, सती प्रथा, शिशु भ्रूण हत्या और शिक्षा जैसे मुद्दों पर विरोध जताया गया जिनका लाभ भी कमोवेश उच्च जाति और वर्ग की महिलाओं को ही मिल सका। '70 के दशक के मध्य में नारीवाद की जो दूसरी लहर उठी उसमें मध्य वर्ग की उन पढ़ी–लिखी महिलाओं ने भूमिका निभाई जो उस समय तक विभिन्न सामाजिक आंदोलनों का हिस्सा बन चुकी थीं। ऐसे आंदोलनों में छात्र, युवा, कामगार, किसान, आदिवासी और दलित मुक्ति जैसे अभियान शामिल थे। उन्होंने दयालुता दिखाने वाले पितृवादी पुरुषों और 'चैरिटी' करने वाली उच्च जाति की औरतों के सामाजिक कामों को खारिज कर दिया और खुद को महिलाओं के अधिकारों के लिए लड़ने वाली वास्तविक योद्धा घोषित किया। नारीवाद की तीसरी लहर उन महिलाओं के नाम है जिन्हें पहले की दोनों लहरों में पर्याप्त स्थान नहीं मिल सका था। दलित, आदिवासी, रंगभेद की शिकार महिलाएं, युवा महिलाएं, भिन्न क्षमताओं वाली औरतें, क्षेत्रीय और धार्मिक आधार पर अल्पसंख्यक महिलाएं और समलिंगी, ये वो महिलाएं हैं जिन्होंने तीसरी लहर को आकार दिया। इस चरण में महिलाओं का असंतोष और गहरा होकर सामने आया।

जेंडर राजनीति का वर्तमान चरण तीसरी लहर से निर्देशित है। इसमें साहित्य, राजनीति, कला–संस्कृति, समालोचना, इतिहास और समाज शास्त्र ने जेंडर राजनीति को परिभाषित किया है। तीसरी लहर का दावा है कि यह औरतों को अपनी पहचान स्वयं बनाने और इस प्रकार स्वयं का नारीवाद गढ़ने और उसे निर्धारित करने की आजादी देती है जो उन्हें नारीवाद क्या है और क्या हो सकता है, को स्वयं के नजरिये से देखने को स्वतंत्र करता है।

पर्यावरणीय नीति एवं आजीविका

जेंडर और विकास का अर्थशास्त्र प्रकृति के साथ होने वाली छेड़छाड़ और उसके दोहन को औरतों की स्थिति से जोड़ कर देखता है। इस नई अवधारणा ने '70 के दशक के मध्य में अपनी जगह बनानी शुरू कर दी थी और इसे इकोफेमिनिस्म का नाम दिया गया। यह नारीवाद और पर्यावरणवाद के तत्वों को एक साथ लाता है तो वहीं एक–दूसरे के लिए चुनौतियां भी प्रस्तुत करता है। हरित आंदोलन से यह गैर मानवीय दुनिया पर इंसानों के प्रभाव का आकलन करता है तो नारीवाद से यह औरतों के दमन और उनकी पीड़ा को देखता है। महिलाओं की आजीविका के मुद्दों जैसे, ईंधन, चारा, पानी, मवेशियों की देखभाल, कृषि, रसोई खेती, खाद्य सुरक्षा और खाद्य स्वायत्तता आदि को इन्होंने न केवल नीति के स्तर पर उठाया है बल्कि इन्हें औरतों की गतिशीलता तथा ग्रामीण एवं आदिवासी महिलाओं के लिए एक सफल मॉडल बनाने के लिए भी उठाया है। उदाहरण के तौर पर, उत्तरांचल में नवदान्य और बेंगलुरू में अन्नदान मृदा एवं बीज रक्षक तथा महिला कृषकों को संगठित करने के लिए आशा काचरू के प्रयास।

पर्यावरणीय आंदोलन, नारीवाद के आधारभूत श्रोत

समूचे उत्तर–पूर्व में राजनीतिक रूप से जागरूक तथा समर्थ ऐसी महिलाओं की अच्छी संख्या है जिन्होंने उस शून्यता को भरने की को. शिश की है जिसे न तो अकेले सरकार और न ही फौज या विद्रोही गुट कभी भर पाए। मणिपुर की मीरा पेइबिस, नागा मदर्स एसोसियेशन ऑफ नगालैंड और नारी अधिकार संघर्ष समिति तथा असोम महिला सचेतन मंच ऑफ असम, उन संगठनों में हैं जिन्होंने बुरी तरह प्रताड़ित महिलाओं तथा कमजोर वर्ग तक पहुंच बनाने के लिए संघर्ष किया है। इसके एवज में उन्हें असाधारण पीड़ा और खतरों का सामना भी करना पड़ा है। इन संगठनों की ज्यादातर सदस्यों ने या तो अकथनीय प्रताड़ना स्वयं झेली है या उनकी साझीदार रही हैं। इंफाल की गलियों में 'इंडियन आर्मी रेप अस' के बैनर लेकर चलती नग्न महिलाओं ने मना. रमा हत्याकांड को सबकी जुबां पर ला दिया था जिसने पूर्वोत्तर में भारतीय सेना की भूमिका को भी कटघरे में ला खड़ा किया था।

जन्म देने का स्त्रियों का अधिकार

जब भी देश में महिलाओं के प्रजनन के अधिकार की बात होती है तो ज्यादातर महिला समूहों का ध्यान परिवार नियोजन के नाम पर होने वाली ज्यादतियों पर जाता है। अब इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च, ऑल इंडिया इंस्टीच्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज तथा इंस्टीच्यूट ऑफ रिसर्च इन रिप्रोडक्शन ने इंसानों पर होने वाले बायो–मेडिकल अनुसंधानों का वैज्ञानिक एवं मेडिकल व वैधानिक आयामों पर बहस की जरूरत बताई है। यूएनएफपीए तथा डब्ल्यूएचओ ने एक दिशा–निर्देश जारी कर महिलाओं को जनसंख्या नियंत्रण की नीतियों का केन्द्र न बनाकर उनके प्रजनन के अधिकार पर फोकस करने को कहा है (सेन, जर्मेन और चेन, 1994)। भारत के ग्रामीण एवं पिछड़े इलाकों में गरीब तथा कमजोर वर्ग की औरतें सबसे ज्यादा जबरन तथा असुरक्षित बंध्याकरण की शिकार होती हैं।

लिंग अनुपात का लगातार कम होना

लिंग अनुपात औरतों के प्रति किसी भी समाज के रुख तथा जेंडर और विकास के मुद्दे पर कमजोर वर्ग के साथ होने वाले व्यवहार को जानने का सबसे अहम सूचक है। भारतीय महिलाओं की स्थिति पर जारी रिपोर्ट–टुवार्ड्स इक्विलिटी– में लिंग अनुपात पर सबसे पहले ध्यान आकर्षित किया गया। रिपोर्ट में महिला कामगारों की घटती संख्या और घटता लिंग अनुपात दोनों पर एक साथ दृष्टि डाली गई और इन्हें देश में महिलाओं की स्थिति का संकेतक बताया गया। इस रिपोर्ट ने महिला कार्यकर्ताओं, विद्वानों और नीति निर्माताओं को अपने विस्तृत ज्ञान के साथ काम करने का मौका दे दिया। कार्यकर्ताओं ने लगातार इस बात की ओर ध्यान दिलाने की कोशिश की है कि देश में पीसीपीएनडीटी एक्ट को पूरी सतर्कता से लागू करने की राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी है। इससे रुढ़िवादी सामाजिक सोच और आधुनिक विचारों के बीच अवरोध पैदा होता है। पिछले कई वर्षों में देश में लिंग अनुपात में उल्लेखनीय कमी आई है। 1901 में 1000 बालकों पर बालिकाओं की संख्या जो 972 थी वो 1991 में 927 हो गई। हालांकि 2011 में इसमें कुछ सुधार हुआ और अब यह 948 तक आ पहुंची है जो कि अभी भी 1901 के मुकाबले काफी कम है।

नारीवाद और दिव्यांग महिलाएं

दिव्यांग औरतें भारतीय समाज में कई तरह का पिछड़ापन झेलती हैं और उन्हें अक्सर हाशिये पर ही जगह मिल पाती है। ऐसा उनकी दिव्यांगता के कारण तो होता ही है साथ ही जाति, धर्म, और उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति के कारण भी है। अरेंज मैरिज जिस संस्कृति की पहचान हो, वहां एक दिव्यांग लड़की के लिए यह अत्यंत कठिन परिस्थिति का निर्माण करती है। हालांकि दिव्यांग लड़कों के लिए विवाह कोई बड़ी परेशानी नहीं बनती क्योंकि उन्हें 'घर का चिराग' होने के नाते खानदान बढ़ाने वाला माना जाता है। यही कारण है कि पुरुष चाहे सामान्य हों अथवा दिव्यांग, दोनों को ही पत्नी के रूप में स्वस्थ और सामान्य लड़की की दरकार होती है (एरेवेलेस, 2000)। हमारे समाज में जहां कन्या भ्रूण हत्या आम है, वहां एक अविकसित और असामान्य भ्रूण को खत्म कर देना कोई बड़ी बात नहीं मानी जाती। दुख इस बात का है कि भ्रूण हत्या के खिलाफ आवाज उठाने वाले कभी असामान्य अथवा भ्रूण का गिराये जाने का विरोध नहीं करते। हमारे देश में दिव्यांग महिलाओं के पक्ष में जो भी अभियान चलाए गए हैं उनसे कुछ महिलाओं को लाभ तो मिला है लेकिन उसका कोई लिखित रिकॉर्ड न होने से विशेष विवरण नहीं मिल पाता है। आईएडब्ल्यूएस ने सिफारिश की है कि शारीरिक रूप से अपंग महिलाओं की प्रताड़ना को वुमेन स्टडीज करीकुलम में शामिल किया जाय ताकि समाज को यह बताया जा सके कि कैसे एक अपंग महिला को परिवार और समाज दोनों स्तर पर प्रताड़ित और अपमानित किया जाता है तथा इसका उन पर कितना असर होता है।

कार्यस्थल पर यौन प्रताड़ना

काम करने के स्थान पर महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न 80 के दशक से भारत में महिला आंदोलनों का मुख्य हिस्सा बना हुआ है। 30 वर्ष के लंबे संघर्ष के बाद भारतीय औरतों के हित में कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (बचाव, रोक एवं नियमन) एक्ट, 2013 को पारित करवाया जा सका। इसी तरह बाल अधिकारों के लिए काम करने वालों ने 2012 में द प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रेन फ्रॉम सेक्सुअल ऑफेंसेज एक्ट को पारित करवाया। वर्ष 2012 में राजधानी दिल्ली में चलती बस में एक युवती के साथ हुए सामूहिक दुष्कर्म की वारदात के बाद से पूरे देश में औरतों की सुरक्षा को लेकर जबर्दस्त आंदोलन चलाया जा रहा है। दिसम्बर, 2012 में हुई उस वारदात के बाद जो आंदोलन भड़का वो अब तक का सबसे बड़ा और क्रांतिकारी था। इससे पहले 1990 में राजस्थान में नौकरी करने के दौरान बलात्कार का बड़ा मामला सामने आया था जिसने न केवल राजस्थान बल्कि पूरे देश को हिला कर रख दिया था। एक सरकारी महिला कर्मचारी ने बाल विवाह को रोकने की कोशिश की थी जिससे बौखलाए लोगों ने उसके साथ सरेआम सामूहिक

दुष्कर्म किया था। महिला गरीब और नीची जाति की थी जबकि अपराध करने वाले उच्च जाति के पढ़े–लिखे लोग थे। राजस्थान महिला विकास विभाग में काम कर रही पीड़िता ने अपने लिए इंसाफ की गुहार लगाई लेकिन उसे न्याय नहीं मिल सका और आरोपियों को बरी कर दिया गया। उस 'भंवरी कांड' ने देश को झकझोर कर रख दिया और महिलाओं के लिए काम कर रहे संगठन विशाखा ने सुप्रीम कोर्ट में एक जनहित याचिका दायर की। विशाखा मामले में 1997 में सुप्रीम कोर्ट ने ऐतिहासिक फैसला सुनाया और भंवरी के बलात्कारियों को सजा सुनाई। कोर्ट ने ऐसे मामलों के लिए दिशा–निर्देश भी जारी किये जिन्हें विशाखा गाइडलाइंस के नाम से जाना गया।

बदलाव के वाहक

महिलाओं के अधिकार के लिए संघर्षरत समूह, कार्यकर्ता, सिविल सोसायटी और स्वतंत्र शोधार्थी तथा शिक्षाविद वे लोग हैं जिन्होंने महिलाओं के मुद्दों को जीवित रखा। हालांकि दूसरी तरफ जाति, वर्ग, धर्म और संस्कृति के नाम पर ऐसे मजबूत अवरोधक भी मौजूद हैं जिन्होंने हमेशा औरतों को हाशिये पर रखने की कोशिश की।

स्वास्थ्य आंदोलन को दिशा देता नारीवाद

औरतों के स्वास्थ्य की ओर महिला आंदोलनों का बड़ा हस्तक्षेप रहा है। घरेलू हिंसा, यौन प्रताड़ना और दहेज हत्याओं के विरोध में होने वाले आंदोलनों का सीधा संबंध औरतों के स्वास्थ्य से भी होता है। भले ही इन आंदोलनों को स्वास्थ्य आंदोलनों के रूप में नहीं देखा जाता लेकिन अच्छी सेहत महिलाओं का मौलिक अधिकार है और यह हर आंदोलन की आत्मा होती है। स्वास्थ्य से जुड़े कई आंदोलन खुले तौर पर भी चलाए जा चुके हैं, जैसे कि हैदराबाद में स्त्री शक्ति संगठन, दिल्ली में सहेली ने खतरनाक गर्भनिरोधक डीपो–प्रोवेरा के विरोध में आंदोलन चलाया था। इसी तरह देश की अलग–अलग संस्थाओं ने भी इंजेक्टेबल गर्भनिरोधकों नेट–एन और नॉर–प्लांट के खिलाफ भी अभियान चलाए हैं। इनके लगातार आंदोलनों का ही परिणाम रहा कि सरकार ने ऐसे खतरनाक गर्भनिरोधकों का इस्तेमाल परिवार नियोजन के कार्यक्रमों में नहीं करने का फैसला लिया, हालांकि उसने इन पर प्रतिबंध नहीं लगाया।

युद्धग्रस्त और तनाव वाले क्षेत्रों में नारीवाद

कश्मीर और पूर्वोत्तर के युद्धग्रस्त इलाकों में यौन हिंसा पर वहां के विशेष वैधानिक और राजनीतिक सत्ता का प्रभाव होता है, जबकि साम्प्रदायिक हिंसा और तनाव के दौरान महिलाओं के शरीर को निशाना बनाया जाता है। युद्धग्रस्त क्षेत्रों में अन्य सामान्य कानूनों के अतिरिक्त एएफपीएसए जैसे कानूनों का भी प्रभाव होता है। ऐसे कानूनों में भी महिलाओं के आंदोलनों के बाद उल्लेखनीय बदलाव लाए जा सके हैं। वर्दीधारी पुरुषों द्वारा किये गये यौन अपराधों के मामले में मिली छूट को हटाया जा सका। सेक्शन 376–2 के मुताबिक सेना के जवानों द्वारा हिरासत में किये गये बलात्कार को 'पावर रेप' का नाम दिया गया था। 1984 के सिख विरोधी दंगों के दौरान महिलाओं के साथ यौन हिंसा हुई थी लेकिन उस पर कोई औपचारिक संज्ञान नहीं लिया गया। 2002 के नरोदा पटिया मामले में सांप्रदायिक हिंसा के नाम पर औरतों के साथ बलात्कार किया गया और भीड़ में शामिल हर व्यक्ति को कोर्ट ने आरोपी ठहराया था।

सेक्स वर्कर के पक्ष में नारीवादी एकजुटता

नारीवादियों ने सेक्स वर्करों, स्वायत्ता, कार्य और कामगारों की श्रेणी को भारतीय परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया है। उग्र स्त्रीवादी सेक्स वर्क को पूंजीवाद का परिणाम मानते हैं तो वहीं नागरिक समाज इसके औचित्य को आर्थिक अवलम्बन के रूप में देखता है। एक बहस इस बात पर भी होती रही है कि भारत में इसे परंपरा और जातिवाद के चश्मे से भी देखा जाता है। दलित समुदायों में देवदासी, जोगिन, मुरली या महाराष्ट्र में कलावंती, जैसे पदों को वेश्यावृत्ति के औपनिवेशिक वैधानिक ढांचे के अंतर्गत लाया जाता है जो आजीविका, जाति और सेक्सुएलिटी की भी अनदेखी करता है।

यौन हिंसा के शिकार ट्रांसजेंडरों के लिए एकजुट

औरतों के जीवन में होने वाली बर्बरतापूर्ण घटनाओं बलात्कार, यौन हिंसा और उसके विभिन्न रूपों के बार–बार सामने आने के कारण हमारे लिए यह जरूरी हो गया है कि हम यौन गतिविधियों और यौन हिंसा को ठीक से समझ लें। इसके पीड़ितों में केवल औरतें ही नहीं बल्कि पुरुष और ट्रांसजेंडर लोग भी हैं। यौन हिंसा के मामले में नारीवादियों को वैधानिकता के दायरे में बलात्कार तथा 'सहमति से' के विचारों को समझना होगा क्योंकि इनका खास महत्व है।

स्त्रीवाद और अंतरवर्गीयता

जाति, वर्ग, जेंडर तथा नृजातियता के वर्गीकरण को भी समझना होगा जो इस बात का संकेत देता है कि जेंडर के मुद्दे को हर मोर्चे पर हल करना होगा न कि केवल पितृसता के आधार पर। जब औरत सिस्टम को हराने का प्रण कर लेती है तो कामयाबी निश्चित मानी जाती है। सफलता को हम त्वरित रूप से आकार लेते नहीं देख पाते हैं लेकिन अगर औरतों के पक्ष में लगातार आवाज बुलंद की जाती रहे और विरोध किया जाता रहे तो यह दमनकारी ताकतों की जड़ें हिलाने के लिए काफी होता है। सामाजिक और राजनीतिक संकट विरोध तथा संघर्ष के लिए प्रेरणादायक होते हैं फिर चाहे वो साहित्य हो, कानून अथवा सामाजिक आंदोलन, ये सब पर लागू होता है। इसका उदाहरण हमने दिसम्बर, 2012 को दिल्ली में चलती बस में एक पारा मेडिकल की छात्रा के साथ हुए सामूहिक दुष्कर्म के बाद मेट्रोपोलिटन और छोटे दोनों प्रकार के शहरों में हुए विरोध आंदोलन के दौरान देखा था।

स्त्रीवादी समूह और सोशल मीडिया

नारीवादियों ने अपनी बात दूर–दूर तक पहुंचाने के लिए सोशल मीडिया

का बेहतरीन इस्तेमाल किया है। साइबर फोरम और ब्लॉग के अलावा गूगल ग्रुप और याहू ग्रुप बनाये गये हैं ताकि सूचनाओं को तेज गति से और ज्यादा लोगों तक पहुंचाया जा सके। महिलाओं से जुड़े मामलों में कार्रवाई, कामों का ब्योरा, संसाधनों तथा तस्वीरों, प्रमाणों, वीडियो, ऑडियो, पोस्टर, गाने और अन्य दस्तावेजों के साथ–साथ डॉक्यूमेंट्री का संग्रहण तथा प्रसार सब कुछ ऑनलाइन संभव हो पाया है। इनका इस्तेमाल औरतों के लिए बेहतर माहौल बनाने तथा अपना विरोध दर्ज कराने के लिए सफलतापूर्वक किया जा रहा है और इनका व्यापक प्रभाव भी सामने आ रहा है। फेसबुक और सोशल मीडिया के अन्य साइटों की मदद से विरोध और नारीवाद का नया स्वरूप दिख रहा है।

एलजीटीबी ग्रुप के साथ नारीवादियों का गठजोड़

20वीं सदी के अंत तक सबसे निजी माना जाने वाला सेक्सुएलिटी का क्षेत्र भी चर्चा का मुख्य केन्द्र बनकर उभरा और यहां तक कि यह कई राजनीतिक बयानबाजियों का मुद्दा भी बन गया। भारत में अब ऐसे लोगों ने भी अपनी लड़ाई तेज की है जो सेक्स के आधार पर और लोगों से अलग हैं और जिनकी सेक्सुअल क्षमता, लैंगिक पहचान तथा प्रैक्टिस भिन्न हैं। हालांकि समलिंगी, हिजड़ा, ट्रांसजेडर, कोठी और ऐसे ही कई अन्य नामों से पुकारे जाने वाले इन अलग–अलग समूहों के संघर्षों में एकजुटता का कोई प्रमाण तो नहीं है फिर भी एक कोशिश जरूर है इन्हें एक ऐसे समुदाय के रूप में स्थापित करने की जो किसी भी अन्य समुदाय या उसकी खूबियों से भिन्न हो।

जेंडर बजटिंग

पिछले दो दशकों में स्थानीय, राज्य और केन्द्र के बजटों में जेंडर को लेकर विमर्श और सक्रियता तेजी से बढ़ी है। दुनिया भर में जेंडर बजट को लेकर बढ़ी सक्रियता एक कोशिश है यह जानने की कि कैसे सरकार बजट में जेंडर के प्रति होने वाले भेदभाव को कम कर सकती है। आवास, भोजन, पोषण, रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा और अन्य सेवाओं तक महिलाओं की पहुंच कितनी हो पाती है (एल्सन, 2006)। जेंडर बजट सीधे–सीधे महिलाओं के विकास को बढ़ावा देता है। महिला केन्द्रित योजनाओं को आवंटन से सशक्तीकरण पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

चुनौतियां और भी हैं

वर्तमान में भी औरतों के सामने चुनौतियों की फेहरिस्त लंबी है। ऐसे देश में जहां आस्था, भाषा और रहन–सहन में अत्यधिक विभिन्नता हो, हम 'सही व्यवहार' के निर्धारण में भी उग्र विरोध पाते हैं। औरतों के मामले में तो यह और भी विशेष हो जाता है। हालांकि राजनीति, मीडिया और बाजार इसे परिभाषित करने में अपनी अहम भूमिका निभाते रहते हैं।

पिछले 50 साल में हमारे देश के नारीवादी आंदोलनों ने 5000 साल से जड़ जमाए पितृसत्ता को चुनौती देने की कोशिश की है। दमन, शोषण और औरतों को दोयम दर्जा देने की परंपरा पर हमला कर, सार्वजनिक और निजी जीवन में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उनके खिलाफ होने वाली हिंसा को उजागर कर, परिवार में पुरुषों की हुकूमत पर सवाल उठाकर, उत्तराधिकार पर, धर्म, मीडिया और राज्य के संगठन पर प्रश्न खड़े कर इन्होंने चुनौतियों का सामना किया है। कानूनी सुधार जैसे विवाह, तलाक, बच्चों की कस्टडी, देखरेख, घरेलू हिंसा, यौन हिंसा, कार्यस्थल पर प्रताड़ना, मातृत्व अवकाश एवं लाभ तथा जेंडर बजटिंग जैसे मुद्दे नारीवादी आंदोलनों की वजह से ही सरकार के एजेंडे में शामिल हो पाए। इसके लिए महिला आंदोलनों के प्रणेता तथा बुद्धिजीवियों ने मिलकर एक साथ काम किया। देश में जेंडर की राजनीति में उल्लेखनीय परिवर्तन आया और यह भीड़ और जमीनी सक्रियता से उठकर निर्णय लेने के स्तर तक पहुंच गया चाहे वो सरकारी हो, गैर सरकारी, स्थानीय निकाय हो या कारपोरेट, हर स्तर पर महिलाओं की सक्रियता तेजी से बढ़ी है।

वन बिलियन राइजिंग

महिलाओं के खिलाफ हिंसा को समाप्त करने का अब तक का सबसे बड़ा अभियान है वन बिलियन राइजिंग। 2012 को वेलेंटाइन डे पर शुरू किये गये इस आंदोलन के पीछे छिपा वो कड़वा सत्य है जो आंकड़ों के रूप में सामने आया है। इसके मुताबिक, धरती पर हर तीन में से एक औरत को पूरी जिंदगी के दौरान या तो पीटा जाएगा या उसके साथ बलात्कार किया जाएगा। अगर दुनिया की आबादी 7 बिलियन है तो ऐसी महिलाओं और लड़कियों की संख्या एक बिलियन से अधिक हो जाएगी। वन बिलियन राइजिंग अभियान का हिस्सा दुनिया के 200 से ज्यादा देश हैं और भारतीय महिलाओं और संगठनों ने इसमें अत्यधिक उत्साह और सक्रिय भूमिका निभाई है।

झारखंड आदिवासी महिला आंदोलन

लंबी लड़ाई के बाद पाया बराबरी का दर्जा

(यह आलेख नारी मुक्ति संघ की नेता व अध्यक्ष कॉमरेड सुशीला से साक्षात्कार पर आधारित है। वे वर्तमान में भूमिगत होकर आंदोलन को दिशा दे रही हैं।)

अक्टूबर, 2003 : राजश्री एवं अमृता

पहले ब्रिटिश हुकूमत और उसके बाद सामंती सत्ता के विरुद्ध संघर्ष का झारखंड की औरतों का लंबा इतिहास रहा है। 1857–58 के संथाल विद्रोह का भारतीय इतिहास पर गहरा असर पड़ा है जिसमें महिलाओं ने सक्रिय रूप से हिस्सा लिया था और कलकत्ता मार्च के लिए तीस हजार महिलाओं का जत्था सड़क पर उतर आया था। उन्होंने शत्रुओं के घरों में छापे भी मारे थे। संथाल हुल के दौरान कई औरतें मारी गईं और कई को जेल भेजा गया था। महिलाओं की सक्रियता 19वीं सदी में मुंडा के आंदोलन में भी देखी गई थी। बिरसा के धर्म की नैतिकतावाद तथा नवजागरणवाद तथा बोंगा के पूजन, चावल की शराब यानी हरिया, गीती ओरा तथा अखारा का विरोध एवं स्त्री–पुरुष दोनों की समानता के सिद्धांत का महिलाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ा था और आंदोलन के दौरान उन्होंने सशस्त्र लड़ाई लड़ी थी।

इसी प्रकार 1960–70 के दशक में झारखंड मुक्ति मोर्चा द्वारा आहूत अभियान में भी औरतों ने बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया था। ये आंदोलन जमीन पर कब्जे और धान की खेती के लिए तथा कर्ज में डूबे आदिवासियों की जमीन कब्जा करने के विरोध में तथा उनके रेहन रखे सामानों की वापसी के लिए किया गया था। महिलाओं ने उस दौरान डायन प्रथा, औरतों को पीटने और शराब के विरोध में भी आंदोलन में हिस्सा लिया था। जेएमएम की योजनाओं में महिलाओं के लिए मुख्य रूप से घरेलू कामों में दक्ष करने की बातें शामिल थीं। उन्हें खाना बनाने, सिलाई और कढ़ाई जैसे कामों का ही प्रशिक्षण दिया जाता था जिसके कारण उनका राजनीतिक उत्थान नहीं हो सका और उच्च शिक्षित नहीं होने के कारण निर्णय लेने के स्तर तक उनकी पहुंच नहीं हो पाई। राजनीतिक रूप से वे ग्राम स्तर तक ही सक्रिय हो पाईं। औरतों पर हिंसा, डायन प्रथा तथा बाहरी लोगों द्वारा यौन प्रताड़ना की वारदातें जारी रहीं। ऐसे में 1980 के दशक में नारी मुक्ति संघ का उदय हुआ। एनएमएस के सामने आने के पीछे आदिवासी किसानों के उस विद्रोह का हाथ था जो वन विभाग के अधिकारियों तथा राजपूत जमींदारों द्वारा उन पर किये गये अत्याचार के कारण उभरा था। इसकी शुरुआत गिरीडीह में हुई जहां संथाल आदिवासियों की संख्या सर्वाधिक थी। एनएमएस एक महिला संगठन है जिसकी सभी कार्यकर्ता और नेता संथाल, मुंडा और ऐसे ही आदिवासी समूहों से हैं।

सामंतवाद का विरोध

आदिवासी औरतों की पीड़ा अकथनीय थी। आदिवासियों का पूरा परिवार राजपूत जमींदारों का बंधुआ होता था फिर चाहे उसमें औरतें हों या बच्चे। औरतों को थोड़े से खाने के एवज में दिन–रात की मेहनत करनी पड़ती थी। सांमत आदिवासियों को इंसान मानते ही नहीं थे। आदिवासियों की नई–नवेली दुल्हन को पहली रात जमींदार के साथ गुजारनी पड़ती थी। जमींदार चाहें तो उन्हें अपने पास भी रख सकते थे। असल में बिहार के गांवों में उस समय सामंती व्यवस्था अपने चरम पर थी। आदिवासियों को चप्पल पहनने की इजाजत नहीं थी और वे जमींदार के सामने कुर्सी पर नहीं बैठ सकते थे। कहा जा सकता है कि अंधेरा इतना गहरा था कि उसे मिटाने के लिए '70 के दशक में आदिवासियों ने विद्रोह का रास्ता अपना लिया। औरतों ने राजपूत जमींदारों के विरोध में अपने संगठन बनाए लेकिन साथ ही किसानों और आदिवासियों के समाज में हो रहे औरतों पर अत्याचार के मुद्दे को भी छोड़ा। इसीलिए शुरुआत में पुरुषों ने एनएमएस का विरोध किया लेकिन बाद में जब उन्होंने देखा कि औरतें अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष कर रही हैं तो वे भी उनके साथ हो लिये। धीरे–धीरे एनएमएस मजबूत स्थिति में आता गया। आदिवासियों के साथ की जाने वाली गाली–गलौज बंद हो गई और अब राजपूत जमींदार भी उन्हें भाई–बहन के संबोधन से बुलाने लगे। उन्हें चप्पल पहनने और कुर्सी पर बैठने का अधिकार मिला।

दूसरी ओर, आदिवासियों को अपने वन उत्पादों पर भी अधिकार मिला। वन विभाग के अधिकारी आदिवासियों का अत्यधिक शोषण करते थे। एनएमएस के संघर्ष के बाद इन पर रोक लग पाई, आदिवासियों का मेहनताना बढ़ा। औरतों की स्थिति में आमूलचूल सुधार आया। अब हालात ये हैं कि घर के मर्द अगर क्रांतिकारी किसान कमिटी के सदस्य हैं तो औरतें एनएमएस की। इस तरह जब आदिवासी औरतों ने समाज में अपनी जगह मजबूत बना ली तब एनएमएस ने उनके मसलों को ज्यादा गहराई से और व्यापक तरीके से उठाना शुरू किया।

एनएमएस का परिचय कॉमरेड भक्ति दा के नाम के उल्लेख के बिना पूरा नहीं हो सकता। वे एनएमएस के संस्थापक तथा पिता समान थे। धनबाद में रहने वाले भक्ति दा महिलाओं के अधिकारों के प्रबल समर्थक थे। सबसे पहले उन्होंने ही कुछ युवा महिलाओं का संगठन बनाया था और उन्हें प्रशिक्षित किया था। भक्ति दा ग्रामीण महिलाओं और बच्चों के बीच बेहद लोकप्रिय थे और उन्होंने उन्हें क्रातिकारी आंदोलनों में खींचा था।

एनएमएस ने न केवल औरतों के उत्थान के लिए काम किया बल्कि उन्हें जंगल के ठेकेदारों के खिलाफ भी खड़ा किया। इसके

अलावा उसका दखल जिन क्षेत्रों में था वे इस प्रकार हैं :

1. बाल विवाह

बिहार की अन्य जातियों में जहां लड़कियों की कम उम्र में शादी का रिवाज है वहीं जनजातियों में ऐसा प्रायः कम ही देखा जाता है। बिहार में 9 से 12 साल तक की लड़कियों की मांग में सिंदूर भर कर लड़का उसे अपने माता–पिता के यहां ही छोड़ कर चला जाता है जिसे 'पहला विवाह' या 'रासगद्दी' कहा जाता है। जब लड़की 18 साल या अधिक की हो जाती है तो लड़के वाले उसे अपने घर विदा कराकर ले जाते हैं और इसे दूसरा विवाह कहा जाता है। दोनों ही मौकों पर लड़की वालों को बहुत खर्च करना पड़ता है। आदिवासियों में भी इसकी देखा–देखी में बाल विवाह का प्रचलन होने लगा था जिसका विरोध एनएमएस ने किया। जब भी उन्हें बाल विवाह के बारे में पता लगता है तो वे वहां जाकर दोनों पक्षों को इसे रद्द करने के लिए मनाती हैं। जब विवाह रद्द हो जाता है तो वे दोनों पक्षों से एक समझौते पर हस्ताक्षर करवाती हैं जिसमें अगले 10 वर्षों तक दोनों का विवाह नहीं करने की बात होती है।

2. दहेज एवं दहेज हत्या

आदिवासियों में दहेज प्रथा बहुत प्रचलित नहीं है लेकिन गैर आदिवा. सियों में इसकी जड़ें मजबूत हैं। शादी के समय लड़की वालों से दहेज के रूप में भारी–भरकम रकम और सामान लेना लेकिन इसके बाद भी लड़की को प्रताड़ित करना और उसकी जान तक ले लेना इनमें आम है। एनएमएस ने दहेज लेने और देने के खिलाफ काम किया और इसके लिए पोस्टर, दीवार पर लिखना, रैलियां करना, प्रदर्शन, नाटक और गांवों में बैठकें कर लोगों को जागरूक किया। दहेज के मामले में भी एनएमएस बाल विवाह के तरीके को ही अपनाता है और दोनों पक्षों को समझाने के बाद उनसे एक समझौते पर हस्ताक्षर करवाता है। एनएमएस ने विवाहों में अत्यधिक खर्च को रोकने के लिए शिविर विवाह का भी उपाय सुझाया है। तमाम उपायों और प्रयासों के बाद एनएमएस के प्रभाव वाले क्षेत्रों में दहेज लेने और देने की घटनाओं में कमी आई है। फिर भी अगर किसी जगह पर महिला को दहेज के लिए प्रताड़ित किया जाता है तो एनएमएस जन अदालत का आयोजन करती है। वहां पुरुषों को समझाया जाता है लेकिन जब वे नहीं मानते हैं तो उनसे विवाह में लड़की वालों से मिले सामान के साथ–साथ उसके घर में बिताए गए लड़की के दिनों की गणना कर लड़के से पूरा हर्जाना भरने को कहा जाता है। साथ ही लड़के की संपत्ति में से आधा हिस्सा भी लड़की और उसके बच्चों के लिए देने को कहा जाता है। इतना होने के बाद ज्यादातर लड़के को अपनी गलती का अहसास हो जाता है और वो अपनी पत्नी को प्रताड़ित नहीं करने का वादा करता है।

3. शिविर विवाह

एनएमएस विवाहों में अनाप–शनाप खर्च के खिलाफ भी जागरूकता पैदा करता है। इसके लिए यह शिविर विवाह का प्रचार करता है जिसमें दहेज नहीं लिया–दिया जाता है। इस विवाह के दौरान दूल्हा और दुल्हन नए कपड़े पहनते हैं, एक–दूसरे को माला पहनाते हैं, मिठाई खिलाते हैं और बस विवाह संपन्न हो जाता है। अक्सर अंतरजातीय प्रेम करने वाले जोड़ों का शिविर विवाह भी एनएमएस करवाता है।

4. यौन प्रताड़ना, बलात्कार

एनएमएस के क्षेत्र में अगर बलात्कार की वारदात सामने आती है तो वे जन अदालत लगाते हैं और अगर वे ये पाते हैं कि लड़का गरीब परिवार से है और टीवीए सिनेमा या अन्य चीजों के गलत प्रभाव में है और अगर वो अपना अपराध स्वीकार करता है तो उसे माफ कर दिया जाता है। लेकिन अगर आरोपी वयस्क है और पहले भी ऐसे अपराध कर चुका है तो उसे कड़ी सजा दी जाती है। उसे पीटा जाता है, सिर मुंडा दिया जाता है और चेहरे पर कालिख लगा कर पूरे गांव में परेड कराया जाता है। ज्यादा गंभीर मामलों में दोषी का एक पैर या एक हाथ काट दिया जाता है। 1994 में बिहार में हुए एक बलात्कार कांड में जब पुलिस रसूखदार परिवार से संबंध रखने वाले आरोपी को बचाने की फिराक में थी तब एनएमएस ने जन अदालत लगाकर उसे कड़ी सजा दिलवाई थी।

5. शराब और महिलाओं को पीटने का विरोध

एनएमएस ने दारू बनाने और पीने के खिलाफ कई अभियान चलाए। कुछ जगहों पर महिलाओं ने दारू के भट्ठे तोड़ डाले और शराब की बोतलें फोड़ दीं। एनएमएस ने समझाया कि नशे की हालत में पुरुष महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार और मार–पीट ज्यादा करते हैं। ये रोचक है कि जन अदालत में जब औरतों को भी अपने पति को पीटने को कहा जाता है तो पति एकदम से सुधर जाते हैं और पत्नी पर कभी हाथ नहीं उठाने का संकल्प लेते हैं। हालांकि अभी भी शराब पीने पर पूरी तरह रोक लगाने में एनएमएस कामयाब नहीं हो पाया है।

6. सेहत के मोर्चे पर

गांवों और जंगलों में सार्वजनिक स्वास्थ्य केन्द्रों की हालत बेहद खराब है और लोगों को कभी भी दवाएं व उपचार समय पर नहीं मिल पाती हैं। एनएमएस ने इस मुद्दे को कई बार रैलियों और अभियानों के माध्यम से स्वास्थ्य विभाग के समक्ष उठाया है। खासकर मानसून के दौरान जब संक्रामक रोगों का डर ज्यादा रहता है, आदिवासी और गांव वाले स्वास्थ्य केन्द्रों के सामने प्रदर्शन करते हैं जिसके बाद अधिकारियों को गांवों में दवाइयों का वितरण करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। एनएमएस चिकित्सा सुविधाओं में बरते जाने वाले भेदभाव के खिलाफ भी काम करता है। गानों के जरिये डॉक्टरों को गरीबों के साथ उचित व्यवहार करने को कहा जाता है। इसके बाद भी जो डॉक्टर गरीब और अमीर की चिकित्सा में भेदभाव करते हैं, जन अदालत में उनकी पिटाई की जाती है।

7. बहुपत्नीवाद

एनएमएस एक पुरुष के कई महिलाओं से विवाह का पुरजोर विरोध करता है। पूर्व में आदिवासियों में एक से अधिक विवाह का कोई विरोध नहीं किया जाता था और वह स्वीकार्य था। लेकिन एनएमएस दूसरा विवाह करने वाले पुरुष और स्त्री को जन अदालत में बुलाता है और उन्हें सजा देता है। संभव हो तो एनएमएस दोनों को अलग कर देता है और पति को अपनी पहली पत्नी का ध्यान रखने का आदेश देता है। स्त्री–पुरुष को गांव में घुमाया जाता है ताकि अन्य लोग भी ऐसा करने से डरें।

8. समान काम के लिए समान वेतन

न केवल बिहार और झारखंड बल्कि पूरे भारत में औरतों को समान काम के लिए भी पुरुषों से बहुत कम वेतन दिया जाता है। एनएमएस ने इस मुद्दे को गंभीरता से उठाया और अब कम से कम उनके इलाके में महिलाओं को पुरुषों के बराबर मेहनताना मिलने लगा है। दस साल पहले सौ केंदु पत्तों के लिए उन्हें 4 से 5 रुपये मिलते थे जो अब बढ़कर 50 से 55 रुपये तक हो गए हैं।

9. अंधविश्वास और डायन प्रथा

अंधविश्वास किसी भी समाज को और ज्यादा पिछड़ेपन की ओर ले जाता है। आदिवासियों में अंधविश्वास बहुत अधिक होता है और वे डायन जैसी प्रथा को मानने लगते हैं। अगर गांव में किसी की मौत हो जाती है तो विज्ञान और ज्ञान के अभाव में वे इसे किसी डायन की करतूत मान लेते हैं और गांव के ही ओझा के पास जाते हैं। ओझा या तांत्रिक अपना मान बढ़ाने के लिए किसी महिला पर इसका सारा दोष मढ़ देते हैं और उसे डायन घोषित कर देते हैं। इसके बाद उस महिला पर अत्याचार की सीमा पार कर दी जाती है और कई बार उसे पीट–पीट कर मार डाला जाता है। बिहार और झारखंड के गांवों में ऐसी कई निर्दोष महिलाएं डायन के नाम पर मारी जा चुकी हैं। एनएमएस ने इसके खिलाफ भी आवाज उठाई। जन अदालत लगाकर ओझा तथा उसके पास जाने वाले व्यक्ति को बुलाया जाता है तथा पीड़ित महिला, यदि वह जीवित है तो, को उन्हें पीटने के लिए कहा जाता है। एनएमएस गांवों में होने वाली मौतों तथा बीमारियों के बारे में लोगों को बताता है ताकि उनमें अंधविश्वास समाप्त हो जाए।

15 अगस्त

नारी मुक्ति संघ 15 अगस्त को स्कूलों में जाकर बच्चों को बताता है कि जो आजादी 1947 में मिली वो झूठी थी इसलिए इस दिन का बहिष्कार किया जाना चाहिए। इस दिन आयोजित होने वाले कार्यक्रमों का वे बहिष्कार करते हैं और काला झंडा फहराते हैं। एनएमएस देश में होने वाले चुनावों का भी बहिष्कार करता है क्योंकि उसका मानना है कि ऐसे भ्रष्ट चुनावों से लोगों का जीवन नहीं बदलने वाला है।

(यह आलेख www.bannedthought.net में पूर्व प्रकाशित आलेख का हिंदी रूपांतरण है)

कार्य और उनके प्रतिबिंब

भारत के बारे में जो एक सबसे चर्चित बात है वो ये कि यह देश विरोधाभासों का देश है और जब भी विरोधाभास की चर्चा होती है तो केन्द्र में रहती हैं औरतें। कहा जाता है कि भारत की औरतें दुनिया की सबसे ज्यादा दबी–कुचली औरतें हैं लेकिन दूसरी तरफ एक और सच ये भी है कि भारत की औरतें सबसे ज्यादा स्वतंत्र और मुखर हैं। फिर ये दोनों बातें एक साथ सच कैसे हो सकती हैं?

देश में उन 18 वर्षों तक जब एक महिला प्रधानमंत्री थीं, महिलाओं के खिलाफ हिंसा और भेदभाव के मामले उतने ही बढ़े जितने कि किसी अन्य प्रधानमंत्री और सरकार के शासनकाल में। देश के किसी भी शहर में, खासकर मुंबई में, बाहर से आने वाला व्यक्ति हर रोज सैकड़ों महिलाओं को हर तरह के काम और व्यवसाय करते हुए देख सकता है चाहे वो डॉक्टर हो, नर्स, शिक्षिका, इंजीनियर या वैज्ञानिक। दूसरी ओर अखबारों के पन्ने हर रोज औरतों पर होने वाली हिंसा की खबरों, बलात्कार और हत्याओं से भरे रहते हैं। हमें समझना होगा कि एक ओर एक महिला का देश की सर्वोच्च कुर्सी पर होना और दूसरी ओर औरतों पर हिंसा की अनगिनत खबरें कहानी के दो सिरे हैं, वास्तविकता तो हमेशा की तरह बीच में होती है।

उर्वशी बुटालिया

(लेखिका पब्लिशिंग हाउस 'जुबान' की संस्थापिका हैं। वे 'काली फॉर वुमेन' की सहसंस्थापिका भी रही हैं जो देश का पहला और केवल महिलाओं का एकमात्र पब्लिशिंग हाउस है।)

ये सर्वविदित है कि आजादी की लड़ाई जितनी मर्दों ने लड़ी उतनी ही औरतों ने भी। अंग्रेजों का विरोध करने का एक तरीका जो गांधी ने अपनाया था वो था अंग्रेजों के बनाए कानूनों का बहिष्कार करने का। इसी के तहत उन्होंने नमक सत्याग्रह शुरू किया था लेकिन चुने हुए लोगों को साथ लेने के कारण दांडी मार्च में औरतों को शामिल होने से रोक दिया। तब औरतों ने उनके फैसले का खुलकर विरोध किया जिसके आगे गांधी को झुकना पड़ा और उन्हें अपने आंदोलन में औरतों को भी शामिल करना पड़ा। उस समय सबसे पहले सामने आईं सरो. जिनी नायडू जो बाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष भी बनीं। उनकी मौजूदगी ने सैकड़ों महिलाओं को नमक सत्याग्रह से जोड़ा जिसके कारण वह आंदोलन कामयाब रहा। उस दौरान औरतों ने न केवल खुलेआम नमक बनाया बल्कि उसे बेचा और खरीदा भी। सरोजिनी नायडू का वो उत्साह आज भी देश की कई महिलाओं में मौजूद है। कुछ वर्ष पूर्व आंध्र

प्रदेश की एक गरीब महिला रोजम्मा ने अपनी कहानी सुनाई। उस कहानी में एक ऐसी महिला थी जो गरीब और लाचार थी। उसका पति जो भी कमाता उसकी शराब पी जाता और फिर उसकी जी भर के पिटाई करता था। शराब में सारी कमाई खर्च हो जाती और अभाव जस का तस बना रहता। उस गांव की लगभग हर महिला की यही कहानी थी। पति से सताई वह औरत एक दिन दूसरों के घर गई और वहां की हालत भी अपने जैसी देखने के बाद तय किया कि अब वो पति के जुल्म नहीं सहेगी। उसने दूसरी औरतों को भी समझाया और इसके लिए सबसे पहले गांव में चलने वाली शराब की दुकानों और भट्ठियों पर धावा बोला। सभी महिलाएं एक हो गईं और उन्होंने मिलकर शराब की दुकानों को नष्ट कर डाला। चंद औरतों की वो शुरुआत जल्दी ही आंदोलन में तब्दील हो गयी और दूसरे गांवों की सताई हुई औरतों ने भी अपने यहां शराब की दुकानों और भट्ठियों के खिलाफ हमला बोल दिया। अब शराब में खर्च होने वाला पैसा बचने लगा और घर के आर्थिक हालात सुधरने लगे। रोजम्मा की मेहनत रंग लाई और गांव दर गांव फैलने वाले आंदोलन को सरकार का भी साथ मिला। सरकार ने जल्द ही प्रदेश में शराब की बिक्री पर रोक लगा दी। इससे जो बचत हुई उसने गांव की गरीब औरतों का जीवन तो सुधारा ही, हिंसा पर भी बहुत हद तक लगाम लगा दी। सरोजिनी और रोजम्मा जैसी ऐसी सैकड़ों महिलाएं हैं जिन्होंने देश के बेहद महत्वाकांक्षी और असरदार महिला आंदोलनों को आकार दिया है।

अधूरे वादे

'60 के दशक तक ये स्पष्ट हो चुका था कि आजादी के संघर्ष के दिनों में किये गये अधिसंख्य वादे पूरे नहीं किये जा सके थे। केन्द्र में सत्तासीन सरकार की विफलता ने एक बार फिर पूरे देश को आंदोलित कर दिया और छोटे–बड़े कई समूह अस्तित्व में आने लगे। महंगाई, भूमि अधिकार, किसानों और छात्रों के आंदोलनों में महिलाओं ने भी बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया। राजनीतिक दलों के भीतर और बाहर बनने वाले समूहों ने देश के हर हिस्से में भूचाल ला दिया जिसका परिणाम आपातकाल के रूप में सामने आया। इंदिरा गांधी की सरकार ने 1975 में देश में आपातकाल की घोषणा कर दी और 18 महीने तक आंदोलनकारियों को भूमिगत होना पड़ा। ये वो दौर था जब असंख्य महिला समूहों का उदय हुआ। इन समूहों ने जो मुद्दे उठाये उनमें सबसे ज्यादा ध्यान बटोरने वाले मुद्दे थे बलात्कार और दहेज के लिए होने वाली हत्याएं। लड़की की शादी के समय लड़के वालों को भारी–भरकम रकम और तोहफे देना और उसके बाद भी लड़की को प्रताड़ित करना तथा कई बार उसे जान से मार देने के मामलों को महिला समूहों ने मजबूती से देश के सामने रखा। ज्यादातर विरोध प्रदर्शन राज्य सरकारों को इंगित करके किये गये जिसके कारण राज्यों को भी बलात्कार और दहेज के खिलाफ कड़े कानून बनाने के लिए बाधित होना पड़ा। हालांकि धीरे–धीरे यह समझ में आने लगा कि केवल कानून और सरकार ही कोई परिवर्तन नहीं ला सकते बल्कि औरतों की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए मजबूत इच्छा शक्ति और तंत्र का होना ज्यादा जरूरी है। ऐसे में और व्यापक आंदोलन चलाने की जरूरत महसूस होने लगी जो औरतों के साथ–साथ समाज के अन्य लोगों को भी जागरूक कर सके। कानूनी सहायता और पुनर्वास केन्द्र बनाए गए। जल्दी ही यह महसूस किया जाने लगा कि जरूरत के हिसाब से ये सारे प्रयास कम हैं और इन्हें पूरे देश में प्रसारित किया जाना चाहिए। भारत इतना बड़ा देश है कि कर्नाटक में होने वाली हलचल को गढ़वाल में नहीं जाना जा सकता फिर भी महिला आंदोलन हर जगह अपना काम कर रहा था।

पिछले कुछ वर्षों में 60 और 70 के दशक के उन आंदोलनों का उत्साह समाप्त सा हो गया है जिनमें गलियों में नारेबाजी कर और दीवारों पर पोस्टर चिपका कर महिलाएं अपना विरोध दर्ज कराती थीं। जाति, वर्ग और धर्म से अलग हटकर सामान्यता का भाव लिये वे आंदोलन अब अधिक जटिल हो गए हैं। देश के बहुत सारे हिस्सों में अब औरतों को गलियों में विरोध जताते भी नहीं देखा जाता। दृश्यता के इस अभाव ने एक भ्रम पैदा किया है क्या महिला आंदोलन अब जीवित भी हैं? उस पर से यह तथ्य कि आज तक के आंदोलनों के बाद भी औरतों की जिंदगी में बहुत कम सुधार हुए हैं, ऐसे आंदोलनों के औचित्य और सफलता पर सवाल उठाते हैं। आंदोलन में शामिल औरतें शहरों में रहने वाली, विदेशी या फिर मध्यम वर्ग की हैं जिनके सिद्धांतों से लाखों ग्रामीण और कम पढ़ी–लिखी औरतों को कुछ भी लेना–देना नहीं है। ऐसी कुछ सांस्कृतिक गलतियां हुई हैं जो इन आंदोलनों को शक के दायरे में लाती हैं।

बैकबोन

हालांकि सच्चाई कुछ और है। ये सच है कि महिला आंदोलनों में शहरी और मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व है लेकिन वे इनकी बैकबोन नहीं है। इन आंदोलनों की रीढ़ की हड्डी तो वे औरतें हैं जो देश के अलग–अलग हिस्से में छोटे–छोटे आंदोलन चला रही हैं। आंध्र प्रदेश में शराब के खिलाफ आंदोलन जैसे अभियानों को गरीब, नीची जाति की और कर्मशील महिलाएं दिशा दे रही हैं। महिलाओं के सामने जो सबसे बड़ी चुनौती अभी है वो धर्म का बढ़ता प्रभाव है। दक्षिणपंथी समूह औरतों को बड़ी सहायता दे रहे हैं। वे उनके आंदोलनों को पूरा समर्थन देते हैं। वे उन्हें सीमित तरीके से सार्वजनिक जीवन में प्रवेश का अधिकार और अवसर तो देते हैं लेकिन उनकी विचारधारा अभी भी पुरातन पितृसत्तात्मक ही है। ऐसे में महिलाएं अपने लिए कोई स्थान तय नहीं कर पाती हैं।

पिछले कुछ दशकों में जो सबसे उल्लेखनीय विकास हुआ है वो स्थानीय निकायों और पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण है। जब इस पर विचार किया जा रहा था तो कई प्रकार के प्रश्न उठाए जा रहे थे कि क्या औरतें इससे सामंजस्य बिठा पाएंगी? क्या वे जनप्रतिनिधि बनने के काबिल हैं? और क्या इससे कोई बदलाव आएगा? यद्यपि ये सभी समस्याएं अपनी जगह मौजूद हैं फिर भी इतना तो जाहिर हो चुका है कि अगर औरतों को ताकत मिले तो वे इसका इस्तेमाल अपने साथ–साथ पूरे समाज के विकास के लिए करने से नहीं चूकेंगीं।

(यह आलेख www.twn.my में प्रकाशित आलेख का हिंदी रूपांतरण है।)

बिहार का समकालीन महिला आन्दोलन

शोधपरक विश्लेषण यह बतलाता है कि बिहार में महिला सशक्तिकरण की जो लहर 21वीं सदी में दिखलाई दे रही है उसके पीछे महिला संघर्षो का एक लंबा इतिहास है जिसने बिहार की महिलाओं में अन्याय और हिंसा के विरुद्ध लड़ने की एक जिजीविषा पैदा की और उनकी दावेदारी बढ़ी। बिहारी महिलाओं ने भी देश के अन्य भागों की महिलाओं की भांति आगे बढ़कर भागीदारी की।

प्रो. भारती एस. कुमार

(प्रोफेसर (सेवा.) इतिहास, पटना विवि)

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस की पहचान और महत्व महिलाओं के आंदोलन के प्रतीक के रूप में ही रही है। 1910 में क्लारा जैटकिन ने न्यूयॉर्क की कपड़ा मिल मजदूरिनों की 8 मार्च 1853 को की गई एक दिवसीय हड़ताल को एतिहासिक मान्यता दी और इस दिन को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में घोषित किया। 19वीं सदी महिलाओं के संघर्ष की शुरूआत थी जिसमें काम के अधिकार और मताधिकार इन दो मुद्दों पर आंदोलन केन्द्रित हुए। फ्रांस की क्रान्ति (1789 ई.) के बाद महिलाओं को फ्रांस में जनतांत्रिक अधिकार नहीं मिले और कॉन्सटीच्युएन्ट असेम्बली में उन्हें जेन्डर पूर्वाग्रह के कारण प्रतिनिधित्व नहीं मिले। परिणामतः 1791 ई. में 'महिलाओं के अधिकारों का वैकल्पिक पत्र' जारी हुआ जिसमें ओलम्पी द गाउज ने यह प्रश्न उठाया कि महिलायें स्वतंत्र रूप से जन्मी हैं एवं उनके अधिकार पुरूष अधिकारों के समान हैं इसलिए उन्हें भी संसद में जाने का अधिकार मिलना चाहिये। 18वीं सदी के चतुर्थांश (1791) से लेकर अब तक पूरे विश्व– अमरीका, यूरोप, लैटिन अमरीका, अफ्रीका, एशिया इत्यादि में विभिन्न प्रजातियों, राष्ट्रीयताओं, क्षेत्रों, समुदायों और धर्म की महिलाएं अपनी मुक्ति के सवालों को लेकर संघर्ष करती रही हैं।

भारत में उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन में जब महिलाओं की भागीदारी बढ़ने लगी तो महिलाओं में राष्ट्रीयता, चेतनता और संगठन की क्षमता की पहचान बढ़ी। पुरुष सत्तात्मक संरचना में स्त्री की दोयम दर्जे की स्थिति राष्ट्रीय आंदोलन में भी बरकरार रही। इसके बावजूद आधुनिकता की मांगों के अनुरूप 'नई स्त्री' की छवि गढ़ी गई।

भारत में स्वतंत्रता के बाद का समकालीन महिला आंदोलन विभिन्न दौर से गुजरा। मुख्यतः इसे दो दौर 1947 से 1970 और 1970 से 2000 में विश्लेषित किया जाता है। प्रथम दौर महिला समूहों के निर्माण का काल था। महिलाओं की भागीदारी मुख्यतः तेभागा (बंगाल) और तेलंगाना के कृषक आंदोलनों में जमींदारों के शोषण के विरुद्ध रही, परन्तु वे नेतृत्वकारी भूमिका में नहीं थीं। पचास एवं साठ के दशक महिला आंदोलनों की दृष्टि से खामोशी के दशक थे। परन्तु 1970 से सक्रिय महिला आंदोलन का दौर शुरू हुआ जिसका प्रवाह अभी तक जारी है। यह विविधतापूर्ण दौर रहा जिसमें महिलायें खुलकर सामने आईं।

बिहार में नारीवाद

बिहार में भी महिलाओं के समानान्तर आंदोलन हुये जिनमें सांगठनिक विकास और सशक्त भागीदारी दिखलाई दी जिसका असर आज भी देश के अन्य हिस्सों से सापेक्ष रूप में अधिक दिखलाई देता है। खेद का विषय है कि नारीवादी लेखकों ने बिहार में पुरूष सत्ता, सामंती और जमींदारों के अन्याय के विरुद्ध किये गये आंदोलनों को नारी आंदोलनों के राष्ट्रीय इतिहास में बहुत कम तरजीह और जगह दी। परन्तु शोधपरक विश्लेषण यह बतलाता है कि बिहार में महिला सशक्तिकरण की जो लहर 21वीं सदी में दिखलाई दे रही है उसके पीछे महिला संघर्षो का एक लंबा इतिहास है जिसने बिहार की महिलाओं में अन्याय और हिंसा के विरुद्ध लड़ने की एक जिजीविषा पैदा की और उनकी दावेदारी बढ़ी। बिहारी महिलाओं ने भी देश के अन्य भागों की महिलाओं की भांति आगे बढ़कर भागीदारी की। उत्तर–औपनिवेशिक काल में उन्होंने सामाजिक परिवर्तनों के आंदोलनों जैसे नक्सलबाड़ी और जे.पी. आंदोलन में सक्रिय तौर पर भाग लिया। इससे महिलाओं में वर्ग चेतना के अतिरिक्त लिंग–भेद, अन्याय और हिंसा के विरुद्ध एकजुटता की चेतना आई। ये आंदोलन हिंसा–व्यक्तिगत और सामूहिक, यौन उत्पीड़न और सामंती दमन पर केन्द्रित रहे। धीरे–धीरे समकालीन महिला आंदोलन के मुद्दे जैसे सुरक्षित पर्यावरण, स्वास्थ्य सुविधायें, शिक्षा, समान मजदूरी, समानता, सुरक्षा और सम्मान जैसे मुद्दे भी शामिल होते गये। यहां तक कि पुलिस की अकर्मण्यता, महंगाई, शराबखोरी, सफाई, पीने का पानी, झुग्गी–झोपड़ी में रहनेवालों की समस्याओं पर भी बिहार की महिलाओं ने आवाज उठाई।

70 के दशक से पूरे देश में समकालीन महिला आंदोलन का दूसरा दौर शुरू हुआ, महिला समूह बने, महिला कॉफ्रेंस हुए और हिंसा के विरुद्ध महिला आंदोलन के बैनर तले स्वतंत्रता आंदोलन दिखलाई दिये। बिहार में भी महिला संगठनों का निर्माण, आंदोलनों में भागीदारी और महिला कॉन्फ्रेंस में शिरकत होने लगी।

अखिल भारतीय कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी के महिला संगठन तो पहले से ही चल रहे थे, परन्तु प्रभावशाली, सक्रिय और कारगर महिला समूह वामपंथी विचारधारा के दलों के बने। सी.पी.आई. का महिला संगठन 'बिहार महिला समाज' 9 अगस्त 1967 को उर्मिला प्रसाद के संयोजकत्व में बना जिसकी अन्य नेता नलिनी राजिमबाले, नीलिमा सरकार, गौरी गांगुली, शकुन्तला सिन्हा और प्रभा शर्मा थीं। सी.पी.एम. का महिला घटक बिहार राज्य जनवादी मोर्चा, बेगूसराय में बना जो 1980 में ऑल इंडिया डेमोक्रेटिक वीमेन्स एसोसियेशन (ऐडवा) से जुड़ा। इसकी प्रमुख नेता दयावन्ती देवी, सुध बिन्दु मित्रा, अपर्णा भट्टाचार्य, नलिनी तिवारी, रामपरी इत्यादि थीं। अन्य संगठनों से भारतीय सांस्कृतिक संघ और छात्रा युवा संघर्ष वाहिनी थे। पहला एस. यू.सी.आई और दूसरा जे.पी. के द्वारा बनाया गया था। यह सब संगठन अभी भी सक्रिय हैं।

80 के दशक में आई.पी.एफ के बैनर के तले महिलाओं का सांगठनिक राजनीतिकरण हुआ। राधाकुमार ने (स्त्री संघर्ष का इतिहास) इन्हीं महिलाओं की एक प्रतिरोध सभा की चर्चा की है जिसमें 50 हजार महिलाओं ने उस समय भूमि सुधार और भूमिहीनों के मध्य जमीन वितरण की मांग को लेकर प्रदर्शन किया था। 1986 में कलकत्ते में आई.पी.एफ. द्वारा आयोजित महिला कन्वेंशन में बहुत से स्वतंत्र महिला समूहों ने भागीदारी की। फलतः 1988 में पटना में महिलाओं की तीसरी राष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस हुई। इससे पहले मुम्बई में 1980 और 1985 में दो राष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस हुई थीं। पटना की इस राष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस में वामपंथी महिला संगठनों का नेतृत्व था परन्तु स्वतंत्रता और स्वायत्त प्रगतिशील समूह जैसे मानुषी, स्त्री मुक्ति संगठन, शेतकारी महिला संगठन, संघर्ष वाहिनी, जागृति, प्रगतिशील नारी उत्पीड़न विरोधी मंच, वोचना, जनवादी महिला संगठन इत्यादि भी शामिल थे। इसके मुख्य संयोजक थे –गेल ऑमवेट, प्रो. गोविन्द केलकर, कुमुदनी पति, अपर्णा महंथ और प्रो. मालंच घोष।

इस कॉन्फ्रेंस ने आई.पी.एफ. के बैनर तले काम कर रहे महिला संगठनों को एकजुट किया। 1991 में प्रगतिशील महिला मंच, बिहार का गठन हुआ जिसकी परिणति फरवरी 1994 में ऐपवा (ऑल इंडिया प्रगतिशील वीमेन्स एसोसियेशन) का निर्माण था। इस संगठन की मुख्य नेता गीता दास, कुमुदनी पति, श्रीलता स्वामीनाथन, मीना तिवारी, सरोज चौबे, कविता कृष्णन इत्यादि रहीं।

महिला आंदोलन के इतिहास की विस्तार से चर्चा करने पर कुछ उल्लेखनीय घटनाक्रम सामने आते हैं। 70 के दशक में दो युग प्रवर्तक जन आंदोलन बिहार में हुये एक नक्सलवादी और दूसरा जे. पी. आंदोलन। दोनों में ही अपने–अपने तरीके से महिलाओं ने भागीदारी की और महिलाओं के प्रश्न उठाये।

जमींदारों के शोषण के विरुद्ध बंगाल के किसानों के द्वारा शुरू किया गया नक्सलबाड़ी का आंदोलन बिहार में भी फैलता गया। मध्य बिहार इसकी मुख्य भूमि रही। बिहार के ग्रामीण खेत–मजदूर और किसान महिलाओं ने बढ़–चढ़कर भागीदारी की। इन्होंने धरना–प्रदर्शन में भाग लिया, और सशस्त्र संघर्ष में हिस्सेदारी की। 'बागी' नक्सलियों को शरण देने, जेलों को तोड़ने, साथियों को छुड़ाने में महिलायें सक्रिय थीं। अग्नि, लहरी और शीला इन तीनों की बहादुरी और उत्सर्ग की दास्तान भोजपुर के गांवों में लोकप्रिय रही है और लोकगीतों में गुंथी है। ये तीनों ही सशस्त्र दस्तों की अग्रिम पंक्ति में थीं और कम उम्र में ही मारी गयी थीं।

80 के दशक में महिला एक्टिविज्म बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक दिखलाई दिया। जमींदारों के द्वारा दलित और पिछड़ी ग्रामीण महिलाओं का दैहिक शोषण और गुन्डा–पुलिस गठजोड़ का पुरजोर मुकाबला इन महिलाओं ने किया जिसमें विक्रम ब्लॉक की चन्द्रावती (अक्टूबर 81) और घोसी ब्लाक जीरवा देवी (जून 82) लड़ते हुए मारी गईं। कैथर कला की औरतों का ऐतिहासिक सशस्त्र संघर्ष भी इसी प्रकार का है। पलामू की आदिवासी लड़की मंजू की जून 1992 में हत्या उसके द्वारा दमनकारी शक्तियों को दी जा रही चुनौती का परिणाम थी।

इस प्रकार नक्सलबाड़ी के आंदोलन की आंच से तपकर निकली महिलाओं में एक नये किस्म का नारीवाद सामने आया। पुरुषों से भी अधिक राज्यसत्ता का दमन झेलती इन महिलाओं ने पितृसत्ता की बेड़ियों को घर–बाहर दोनों जगह तोड़ा। विचारधारा की राजनी. तिक समझ ने उनमें औरत बनानेवाले आकर्षण–गहने, कपड़े, प्रसाधन के प्रति मोह को तोड़ दिया। लम्बी–लम्बी मीटिंग में बेहिचक और बिना किसी हीनभावना के वे बहसें करती थीं और रणनीति तय करने में भागीदारी करती थीं।

जे.पी. आंदोलन (1974) में मध्यम वर्गीय महिलाओं की शिरकत अधिक रही। संपूर्ण क्रांति का आह्वान किया गया। जय प्रकाश नारायण द्वारा जनवरी 1975 में छात्रा युवा संघर्ष वाहिनी की स्थापना की गई जिसमें तीस वर्ष की उम्र तक के युवक–युवतियां सदस्य हो सकते थे। इसके सिद्धान्त थे–चुनाव में भाग नहीं लेना, सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए काम करना एवं ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर भूमिहीन खेत मजदूरों के हकों के लिये संघर्ष करना। संघर्षवाहिनी में बहुत सी छात्राओं ने आगे बढ़कर भाग लिया। प्रमुख महिला एक्टिविस्ट थीं– कंचल बाला, मणिमाला, कनक, एलिस कंचन, अंजलि और कुमुद।

मार्च 1978 में वाहिनी ने भूमिहीनों को जमीन दिलवाने के लिये बोध गया मठ के महन्त की 12 हजार एकड़ जमीन को 'टारगेट' बनाया। इसमें से सरकारी सर्मथन से सिर्फ 1000 एकड़ भूमि ही अन्ततः (1981) में वितरित हो सकी। वितरण की प्रक्रिया और वितरण के हकदारों पर मतभेद होने लगा। वाहिनी ने स्वयं सूची बनाने की मांग की जिसमें इस जमीन को भूमिहीनों, विकलांग, विधवाओं और छोटे किसानों के बीच बांटने का प्रस्ताव था और इनमें भी या तो भूमिविहीन या जीवन निर्वहन के साधन विहीन पुरुषों को और उन महिलाओं को जो या तो विधवा थीं या जिनके परिवार के सदस्यों के पास जमीन न हो, ऐसे ही लोगों को भूमि का वितरण के योग्य समझा गया। जिन्दा या मृतक पुरुष के साथ संबंध ही औरत को हकदार बनाता। इसका विरोध महिला साथियों ने किया। इस संघर्ष से महिलाओं के पितृसत्तात्मक अधीनीकरण का प्रश्न सामने आया। ग्रामीण औरतों ने आक्रामक तेवर अख्तियार किया और अपने नाम को भी पट्टे में लिखे जाने की मांग की। महिलाओं का कहना था कि जमीन केवल पुरुषों के नाम होने से उनकी ताकत बढ़ेगी और वे औरतों को भी दबायेंगे। संघर्ष वाहिनी ने भी समान अधिकार के प्रश्न को सही महसूस किया। महिला हितों और पुरुष हितों में टकराव होने लगा।

यद्यपि बोध गया आंदोलन में 3000 एकड़ दखल की गई जमीन से केवल एक हजार एकड़ भूमि ही वितरित हो सकी परंतु इसका सकारात्मक परिणाम था कि पहली बार पट्टे में औरतों का नाम संयुक्त रूप से जुड़ा। वर्ग के साथ लिंग का मुद्दा भी जुड़ा और पूरे देश में यह ऐतिहासिक संदेश गया।

80 का दशक वह काल था जब देश में बलात्कार, दहेज हत्यायें, सती प्रथा की बढ़ती घटनाओं के विरुद्ध संगठित और व्यापक रूप से आंदोलन चल रहे थे। बिहार की महिलाओं का राजनीतिकरण हो रहा था जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं और वे वर्ग, जाति और जेन्डर की असमानताओं को समझ रही थीं और महिलाओं को एकजुट कर रही थीं। 1988 का पड़रिया बलात्कार काण्ड महिलाओं के सामूहिक बलात्कार का प्रारंभिक उदाहरण था, बहुत चर्चित रहा क्योंकि इस पर न्यायालय का फैसला वर्ग और जाति पूर्वाग्रहों से ग्रसित था जिसमें कहा गया कि ये गरीब महिलायें हैं बिक जा सकती हैं, और आरोपितों को छोड़ दिया गया।

90 का दशक वामपंथी महिला संगठनों की सक्रियता का काल है, जब उन्होंने पुलिस, गुंडों जमीदांरो और राजनीतिज्ञों के द्वारा किये गये बलात्कार का प्रतिरोध किया। इस दशक में महिला आंदोलन की तीन उपलब्धियां गिनी जायेंगी। महिलाओं पर बढ़ते हमले का पुरजा. `र विरोध और बलात्कारियों को सजा दिलवाना, बिहार में महिला आयोग का गठन एवं पंचायती राज अधिनियम को लागू करवाने में सफलता। व्यक्तिगत और सामूहिक बलात्कार के उल्लेखनीय मामले इस प्रकार हैं,

- 1991 में दनवार बिहटा में महिलाओं का सामूहिक बलात्कार वहां के जमींदार ज्वाला सिंह के द्वारा किया गया जिसका जोरदार विरोध हुआ।
- 8 मार्च 1991 को प्रगतिशील महिला मंच की ओर से लगभग 6 हजार महिलाओं ने एक रैली निकाली और आयकर गोलम्बर को घंटो घेरा। बाद में ज्वाला सिंह की हत्या भी हुई।
- हजारी बाग (अब झारखंड) में 29 मई 1991 को पुलिस कान्स्टेबल अल्बीना मुन्डू का बलात्कार दो पदाधिकारियों द्वारा किया गया। तमाम धमकियों के बावजूद महिला संगठनों के समर्थन से अल्बीना डटी रही। दबाव जब बढ़ने लगा तो मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव को सी.बी.आई. इन्क्वायरी घोषित करनी पड़ी। यहां तक की सुप्रीम कोर्ट के हस्तक्षेप पर डी.जी.पी. को दोषियों को गिरफ्तार करना पड़ा।
- जमशेदपुर में 15 वर्षीय जार्जिना का एक ईसाई पादरी के द्वारा यौन उत्पीड़न, इंटर की छात्रा ज्योतिशीला मिन्ज का 5 नवम्बर 1992 में अपहरण, बलात्कार और कोयले की भट्टी में फेंक देना पुलिस और प्रशासन की उदासीनता और अकर्मण्यता के उदाहरण हैं। इनमें महिला संगठनों ने आगे बढ़कर पहल की और पीड़िता को नैतिक और कानूनी समर्थन दिया।
- औरतों को नंगा घुमाने, डायन घोषित करने की घटनायें भी सामने आई। 1994 में समस्तीपुर में एक दलित महिला भुखली देवी को खेत से आलू चुराने के आरोप में सड़क पर नंगा घुमाया गया।
- इसी तरह की घटना उस समय इलाहाबाद की एक दलित महिला शिवपतिया के साथ भी हुई थी। इसका सामूहिक विरोध महिला संगठनों ने किया जिसमें ऐपवा, बिहार महिला समाज और जनवादी महिला समिति प्रमुख थीं। गौरतलब है कि धरना पर बैठी महिलाओं ने सत्ता पक्ष के गुंडों की धमकियों का जवाब देते हुए उन्हें वहां से भगाया।

सत्ता पक्ष के लोगों यानि जनप्रतिनिधियों द्वारा किस प्रकार महिलाओं का शोषण और यौन उत्पीड़न किया जा रहा है बिहार में इसके दो बड़े उदाहरण हैं। 90 के दशक में लालू यादव के एम.एल.ए. योगेन्द्र नारायण सरदार के एक महिला के बलात्कार के दौरान ' बौबेटाइज' कर देने की घटना पर इतना अधिक विरोध हुआ कि लालू यादव को योगेन्द्र नारायण सरदार को राष्ट्रीय जनता दल से बाहर निकालना पड़ा।

2010 ई0 में राजकिशोर केसरी, भाजपा, के एम.एल.ए. की हत्या रूपम ठाकुर के द्वारा सार्वजनिक रूप से की गई क्योंकि वह वर्षो से उसका शोषण करता आ रहा था। यह घटना हाल ही की है जिसमें सारे महिला संगठनों ने एकजुटता ही नहीं दिखाई बल्कि कानूनी लड़ाई में भी उसका साथ दिया। भाजपा द्वारा मामले को रफा–दफा करने के बावजूद महिला आंदोलन के दबाव ने मुख्यमंत्री नीतीश कुमार को सी. बी.आई. इन्क्वायरी करने का आदेश देना पड़ा। परन्तु रुपम ठाकुर को न्याय नहीं मिला।

इसी प्रकार अंतर्राष्ट्रीय प्रोफेसर पापिया घोष और उसकी नौकरानी मालती देवी की दिसम्बर 2006 में हत्या ने बिहार ही नहीं पूरे देश–विदेश के बुद्धिजीवियों को झकझोर दिया। महिला संगठनों ने

एकल महिला की सुरक्षा के प्रश्न को उठाया और असली अपराध्यिों को पकड़ने की मांग की। अभी तक भी दो मुख्य अपराधी पकड़े नहीं गये।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है बिहार का समकालीन महिला आंदोलन आज तक भी जारी है जबकि देश में महिला आंदोलन की धार अब कुन्द हो चुकी है। 21वीं सदी में भी बिहार की महिलायें अपने हितों की रक्षा, सशक्तिकरण और समावेशीकरण के लिये संघर्ष कर रही हैं। मुद्दा चाहे शराब. बंदी का हो या मनरेगा में समान काम और समान मजदूरी का हो, नौकर–दाई संघ या रसोइया संघ का निर्माण हो, 33 प्रतिशत आरक्षण बिल को पारित करने का बड़ा सवाल हो या महिलाओं के उपभोक्ताकरण का हो, सभी पर महिलाओं ने हस्तक्षेप किया है।

दिल्ली के निर्भया कांड (दिसम्बर, 2012) से लेकर हाजीपुर की दलित छात्रा डीका के बलात्कार और हत्या (जनवरी, 2017) तक बिहार की महिलाओं का आंदोलन जारी है। बढ़ते हुए धार्मिक कट्टरपंथ एवं सम्प्रदायवाद का विरोध भी बिहार की महिलाओं के एजेन्डा में हमेशा से रहा है। इस प्रकार बिहार में ग्रामीण और शहरी महिलाओं द्वारा एक मजबूत आंदोलन खड़ा किया जाता रहा है जिसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। यह पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिला कर चलने वाले नक्सलबाड़ी और जे.पी. आंदोलन में भी दिखलाई दिया। इस आन्दोलन का दूसरा पक्ष विशुद्ध महिला आंदोलन के रूप में है जिसका नेतृत्व और भागीदारी औरतों के द्वारा की गई।

जाहिर है कि प्रतिरोध की धरती बिहार 'महिला एक्टीविज्म' की भूमि भी रही है और महिलाओं ने महिला सक्रियता के मापदंडों को पुनर्भाषित किया, पितृसत्ता की बेड़ियों को तोड़ा और नारीवाद की नयी परिभाषा गढ़ी जिसमें ग्रामीण और शहरी महिलायें एक समझ के साथ चल रही हैं।

तारा रानी श्रीवास्तव : साहस की मिसाल

बिहार के सारण में एक साधारण परिवार में जन्मीं तारा रानी श्रीवास्तव धैर्य और साहस की सच्ची मिसाल हैं। उनका विवाह फुलेन्दु बाबू से हुआ था और दोनों ही पति–पत्नी देश की आजादी के दीवाने थे। इसीलिये 1942 में गांधी जी के भारत छोड़ो आंदोलन में भी उन्होंने बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया था। उन्होंने अपने क्षेत्र में प्रदर्शन किया और पुलिस स्टेशन पर झंडा फहराने की योजना बनाई। उन दिनों पुलिस थाने ब्रिटिश सरकार की सत्ता का केन्द्र माने जाते थे और उनकी छतों पर तिरंगा फहराना बड़ा अपराध। फिर भी तारा रानी और उनके पति ने बड़ी संख्या में लोगों के साथ 'इंकलाब' के नारे के साथ थाने की ओर मार्च करना शुरू किया। मार्च की सूचना मिलते ही पुलिस ने उन पर गोलीबारी शुरू कर दी। फुलेन्दु बाबू को भी गोली लगी और वे गिर पड़े। तारा रानी ने अपने पति को देखा और अपनी साड़ी फाड़कर गोली लगने वाले स्थान पर बांध दिया। लेकिन वे रुकी नहीं और जुबां पर इंकलाब और हाथ में तिरंगा लिये हुए थाने की ओर बढ़ने लगीं। बाद में जब वे लौट कर आईं तो उनके पति की मौत हो चुकी थी। इतने बड़े बलिदान के बाद भी तारा रानी आजादी की लड़ाई में शामिल रहीं।

बिहार

समाधान की ओर : महिला शांति सेना

भारत में गांधी की मौत के बाद ही उनके अहिंसा के सिद्धांतों पर चलने वालों की संख्या भी घट गई। आज के दौर में गांधी और उनके सिद्धांतों को अप्रासंगिक मानने वालों की भी कमी नहीं है। लेकिन कुछ लोग आज भी ऐसे हैं जिन्होंने न केवल अपने जीवन में अहिंसा और शांति को अपनाया है बल्कि दूसरों के कल्याण के लिए भी इसे लागू किया है। ऐसे ही व्यक्ति हैं आचार्य राममूर्ति। 91 वर्ष के राममूर्ति ने जीवन के इस पड़ाव पर आकर भी रुकना मंजूर नहीं किया और एक नये सामाजिक आंदोलन का सूत्रपात किया जो औरतों के अधिकारों तथा ग्राम एवं जिला स्तर पर अहिंसा कि सिद्धांतों की स्थापना करता है। उनके आंदोलन के तहत हजारों महिलाएं शांति सेना का रूप ले चुकी हैं।

देश में '30 और '40 के दशक में गांधी जी के आह्वान पर हजारों महिलाएं देश की आजादी की लड़ाई में कूद गई थीं। कई ने अपना घर छोड़ दिया तो कई महिलाएं जेल गईं। बापू के निधन के बाद महिलाओं ने अपना नेतृत्वकर्ता खो दिया और उनका आंदोलन बिखर गया। बाद के दशकों में भारतीय सरकार ने औरतों के हित में कई विधान पारित किये। एक सबसे बड़ी बात जो हुई वो स्थानीय निकायों तथा पंचायत चुनावों में औरतों को आरक्षण देना था। बिहार ने सबसे आगे बढ़कर औरतों को 50 प्रतिशत तक का आरक्षण दिया और उसी का परिणाम रहा कि 45 हजार महिला प्रतिनिधि चुन कर आ सकीं। लेकिन वे सब बिना तैयारी और अनुभव के मैदान में आईं थीं इसलिए उनके सामने चुनौतियों का पूरा पहाड़ खड़ा था। ऐसे समय में सामने आए आचार्य राममूर्ति।

आचार्य पिछले 40 वर्षों से 'श्रमभारती' का संचालन कर रहे हैं। 1952 में बिहार के जमुई में गांधी जी के करीबी धीरेन्द्र मजूमदार द्वारा स्थापित श्रमभारती मानती है कि लोगों को अपनी समस्याओं का समाधान खुद तलाशना चाहिए। इस संस्था का गठन गांवों की मौलिक समस्याओं का समाधान करने के उद्देश्य से की गई थी लेकिन स्थापना के 25 वर्ष के बाद इसने औरतों को संगठित तथा सशक्त बनाने की दिशा में काम करना शुरू किया। आचार्य ने पाया कि जो महिलाएं चुन कर आ रही हैं यदि उन्हें सही प्रशिक्षण तथा दिशा–निर्देशन मिले तो वे अपनी शक्तियों का इस्तेमाल औरतों की बेहतरी के लिए कर सकती हैं। जिला एवं ग्राम पंचायतों में चुनकर आने के बाद वे निर्णय लेने के स्तर पर भी का कर सकती हैं। उन्होंने चुनी हुई महिला प्रतिनिधियों को एक हफ्ते के प्रशिक्षण कार्यक्रम में शामिल होने का अवसर दिया जिसमें उन्हें अपनी नई भूमिका के महत्व तथा अपने दायित्वों के बारे में बताया जाता था। गांधी जी के 'शांति ब्रिगेड' की तर्ज पर उन्होंने इन प्रशिक्षित महिलाओं को 'शांति सेना' का नाम दिया।

वर्ष 2000 में मैक मास्टर के डॉ. रामा सिंह तथा आचार्य राममूर्ति ने मिलकर गांधी के आदर्शों को मानने वाले हर तबके के लोगों के लिए एक सभा का आयोजन किया जो वैशाली में हुई। बुद्ध और महावीर के शांति और अहिंसा के सिद्धांतों को सर्वप्रथम इसी धरती से सारे विश्व में प्रचारित किया गया था इसलिए वैशाली से उपयुक्त कोई स्थल सभा के लिए नहीं हो सकता था। सभा का पहला दिन एक प्रशिक्षण शिविर था जिसमें 100 से अधिक महिलाओं ने स्वेच्छा से भाग लिया था। वे महिलाएं कभी किसी राजनीतिक दफ्तर या कार्यालय में नहीं गई थीं और न ही कभी किसी बैठक का हिस्सा बनी थीं। उनमें से कई निरक्षर थीं। आगे के दो दिन ग्रामीण नेताओं तथा आम लोगों के प्रशिक्षण के लिए तय था। पूरे प्रशिक्षण के दौरान औरतों ने जिस उर्जा और उत्साह से भाग लिया था वो हमें हैरत में डालने वाला था।

वैशाली सभा के दो महीने के भीतर ही बिहार में चार शांति रैलियां की गईं जिनमें हजारों औरतों ने भाग लिया। महिला शांति सेना राज्य के 10 से अधिक जिलों में महिलाओं और उनकी प्रतिनिधियों के लिए सभा और प्रशिक्षण का आयोजन कर चुकी है जिसका लाभ 10 हजार से ज्यादा महिलाओं को हुआ है। वर्ष 2003 के अक्टूबर में आचार्य राममूर्ति को कनाडा में आयोजित वार्षिक महात्मा गांधी लेक्चर में आमंत्रित किया गया जिसमें उन्होंने गांधी के शांति व अहिंसा के सिद्धांतों के साथ–साथ अपनी महिला शांति सेना के बारे में भी दुनिया को बताया। आचार्य ने कहा कि गांधी केवल इतिहास के एक नेता नहीं थे बल्कि वे आज भी भारत के गाइड हैं। लोकतंत्र को सबसे निचले स्तर पर स्थापित करने तथा औरतों और हरिजनों के विकास को सबसे जरूरी बताने वाले गांधी के विचारों की देश में स्थापना हो चुकी है।

(आलेख के लेखक एनी एम. पियरसन सामाजिक कार्यकर्ता तथा हैमिल्टन के इंडियन सोसायटी के सदस्य हैं)

बिहार की वामाएं

बिहार की परंपराएं शिक्षा और नारी उत्थान से जुड़ी हैं। इसका इतिहास उन सुधारकों और आंदोलनकारियों की कथाओं से भरा है जिन्होंने अपने कार्य और आचरण से पूरे विश्व में राज्य का नाम रोशन किया है। यहां हम जानने की कोशिश करेंगे कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मोर्चे पर किन महिलाओं ने देश के सामने नजीर पेश की है।

डा. कादम्बिनी गांगुली : भागलपुर में ब्रह्म समाज ने मोक्षदा बालिका विद्यालय की स्थापना की जिसने न केवल बिहार को सबसे पहले स्कूल जाने वाली लड़कियां दीं बल्कि भविष्य में भी देश को पहली महिला स्नातक देने का गौरव प्राप्त किया। जनवरी, 1868 में श्री के. डी. घोष ने इस विद्यालय को खोला था जो आरंभ के वर्षों तक अस्थायी परिसरों में चलता रहा। श्री घोष की यह स्पष्ट धारणा थी कि देश का विकास महिलाओं की शिक्षा और तरक्की के बिना नहीं हो सकता। सबसे पहले आठ लड़कियों ने स्कूल में दाखिला लिया जिसमें से डा. कादम्बिनी गांगुली कालांतर में देश की पहली महिला स्नातक बनीं। दो लड़कियां वे थीं जो बिहार की पहली स्कूल जाने वाली लड़कियां बनीं। 1881 में श्रीनगर राज हाउस में छोटी सी जमीन खरीदकर स्कूल को वहां स्थानांतरित किया गया जहां वर्तमान में भी यह स्कूल मौजूद है।

चम्पाकला देवी : 1932 में गांधीजी के आह्वान पर पूरे देश में औरतों की शिक्षा को लेकर आंदोलन चलाए जा रहे थे। उसी दौरान भागलपुर में श्रीमती चम्पाकला देवी ने शिक्षा के लिए लोगों में जागरूकता फैलाने के लिए बड़े काम किये। चम्पाकला देवी हमेशा परदे में रहीं लेकिन फिर भी लड़कियों की शिक्षा के लिए काम करती रहीं।

13 दिसम्बर, 2010 को मुजफ्फरपुर के चैनपुर–बिशुनपुर गांव में एस्बेस्टस कारखाने को बंद कराने की मांग पर सशस्त्र प्रदर्शन करतीं महिलाएं। उनके प्रबल विरोध के बाद राज्य सरकार को कारखाना बंद करना पड़ा था।

अघोर कामिनी देवी : बिहार में महिला शिक्षा को लेकर ब्रह्म समाज ने सदैव अग्रणी भूमिका निभाई है। मुंगेर और भागलपुर के अलावा पटना भी उनका प्रमुख केन्द्र रहा और यहां उन्होंने कई बड़े स्कूल खोले जिनमें राम मोहन राय सेमिनरी, बांकीपुर गर्ल्स हाई स्कूल, रवीन्द्र बालिका विद्यालय तथा अघोर प्रक. ाश शिशु सदन महत्वपूर्ण रहे। आज भी ये विद्यालय राज्य की शिक्षा व्यवस्था में अपनी पैठ रखते हैं। बांकीपुर गर्ल्स हाई स्कूल की स्थापना में अघोर कामिनी देवी के योगदान को नहीं भुलाया जा सकता। ख्यात पी.सी. राय की पत्नी श्रीमती अघोर कामिनी देवी इस स्कूल को लेकर इतनी संवेदनशील थीं कि वे कुछ समय तक अपने पति और बच्चों से अलग रहीं और लखनउ में रहकर स्कूल चलाने की विधिवत शिक्षा ली। 1892 में मात्र 48 रुपये से उन्होंने इस स्कूल को शुरू किया। वे घर–घर जाकर लोगों से अपनी बच्चियों को स्कूल भेजने का आग्रह करतीं लेकिन हर जगह उन्हें तिरस्कार और इंकार ही प्राप्त होता। अपने इरादे पर अटल अघोर कामिनी देवी ने हार नहीं मानी और 44 लड़कियों को पढ़ने के लिए तैयार कर लिया जिनमें से कुछ राज्य के बाहर की भी थीं। अघोर कामिनी देवी के इस कार्य में उनकी दो बेटियों ने भी सहयोग किया और कालांतर में यह स्कूल पूरे क्षेत्र में सर्वाधिक सम्मानित और गुणवत्तापूर्ण विद्यालय साबित हुआ।

मणिमाला : '70 का दशक बिहार के लिए आंदोलनों और राजनीतिक सक्रियता का दशक रहा। संपूर्ण स्वराज की मांग को लेकर जयप्रक. ाश नारायण के आंदोलन की गूंज पूरे देश में सुनाई दी तो इस दौरान बिहार में महिलाओं को भी अपनी आवाज बुलंद करने का पूरा मौका मिला। जे.पी. ने महसूस किया कि आंदोलन में युवाओं को पूरा प्रति. निधित्व मिलना चाहिए और इसके लिए उन्हें अलग संगठन के रूप में जोड़ना होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए जनवरी, 1975 में छात्र युवा संघर्ष वाहिनी का गठन हुआ। इस संगठन ने अन्य कई मुद्दों के अलावा जिस एक मोर्चे पर जमकर काम किया वह था जमीन का अधिकार। 'जो जोते जमीन उसकी' के नारे पर काम करते हुए वाहिनी ने कई उल्लेखनीय कार्य किये और इसमें उनकी महिला सदस्यों का योगदान बड़ा होता गया। मणिमाला वाहिनी की सबसे जुझारू सदस्य थीं और उन्होंने 1981 तक सक्रिय रूप से इसमें काम किया। 8 अप्रैल, 1978 को बोधगया में जमीन के अधिकार को लेकर बड़ा विरोध प्रदर्शन किया गया जिसमें महिलाओं ने भी बढ़कर हिस्सा लिया। नवम्बर में परसा गांव में मजदूरों ने अरहर की फसल को काटने का फैसला किया। जानकारी पाते ही जमीनदारो ने खेतों को घेर लिया। उस समय महिलाओं ने हिम्मत दिखाई और जबर्दस्ती खेत में घुसकर फसल को काट लिया। महिलाओं को आगे बढ़ता देखकर पुरुषों में भी हौसला बढ़ा और सबने मिलकर लाठीधारी जमीनदारों को खदेड़ कर भगा दिया। इसी प्रकार के कई अन्य उदाहरण भी मिलते हैं जब औरतें आंदोलन का अगुआ बनीं।

सुशीला सहाय : बिहार महिला समाज ने बिहार में स्त्रियों के हित में उल्लेखनीय काम ही नहीं किये बल्कि राज्य को ऐसी कई वीरांगनाएं भी सौंपी हैं जिन्होंने अपना पूरा जीवन औरतों के अधिकारों और उनकी आजादी के नाम कर दिया। ऐसी ही जुझारू महिला हैं सुशीला सहाय। विद्यार्थी जीवन से ही महिला आंदोलनों में बढ़–चढ़ का हिस्सा लेने वाली सुशीला जी ने कई मोर्चों पर औरतों की लड़ाई लड़ी है। वे बताती हैं कि बिहार महिला समाज से उनका जुड़ाव 1972 में हुआ लेकिन '80 के दशक में वे इसमें सक्रिय हुईं। बिहार महिला समाज एक ऐसा मंच था जहां से हर वर्ग, स्तर और क्षेत्र की महिलाएं अपनी आवाज उठा सकती थीं। चाहे वो पढ़ी–लिखी औरतें हों या अशिक्षित, उच्च वर्ग की हो निम्न वर्ग की, मजदूर हों या कुलीन, हर स्तर की औरतें एक समान रूप से अपना प्रतिनिधित्व दिखा सकती थी। ये बड़ा कारण था कि सुशीला जी ने बिहार महिला समाज को अपना मंच चुना। यह समाज एनएफआईडब्ल्यू अर्थात् नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन वुमेन का अंग है जिसका गठन 1954 में प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी अरुणा आसिफ अली ने कोलकाता में किया था। आजादी मिलने के बाद भी जब ये लगने लगा कि मौजूदा सरकारें औरतों के अधिकारों के लिए कुछ खास नहीं कर पाईं तो एनएफआईडब्ल्यू का गठन करना पड़ा। धीरे–धीरे फेडरेशन का प्रसार अन्य राज्यों में भी हुआ और बिहार में इसे बिहार महिला समाज का नाम दिया गया। सुशीला जी बताती हैं कि राज्य में इस समाज ने शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में कई ऐसे काम किये जो मील का पत्थर साबित हुए।

वे बताती हैं कि कर्पूरी ठाकुर के मुख्यमंत्रीत्व काल में बिहार में महिलाओं को सरकारी नौकरी में 3 फीसद का आरक्षण दिया गया था। इसे हासिल करने में अन्य संगठनों के साथ ही महिला समाज की भी महती भूमिका थी। हालांकि बाद की लालू प्रसाद यादव की सरकार ने इसे समाप्त करने की भरसक कोशिश की लेकिन समाज के उग्र आंदोलनों के कारण वे इसे पूरी तरह समाप्त नहीं कर पाये। उन्होंने इसे घटाकर 3 से 2 फीसद कर दिया और औरतों को अगड़ों और पिछड़ों में बांट दिया। इसी प्रकार बिहार में महिला आयोग के गठन में भी बिहार महिला समाज का बड़ा योगदान रहा लेकिन जब आयोग बना तो इसमें सभी प्रमुख पदों पर पुरुषों की नियुक्ति कर दी गई। समाज ने इसका तीखा विरोध किया और इसकी सदस्य सड़कों पर उतर आईं। उग्र विरोध के कारण महिलाओं की नियुक्ति प्रमुख पदों पर की गई। हालांकि वे मानती हैं कि अभी भी आयोग में पूरी तरह नियमों का पालन नहीं किया जा रहा है। इसमें दो ऐसी महिलाओं का सदस्य होना आवश्यक है जो महिला आंदोलनों से जुड़ी रही हैं। सुशीला सहाय वृद्धावस्था पेंशन योजना के तहत वृद्धाओं और दिव्यांगों का पेंशन 30 रुपये से बढ़ाकर 300 रुपये तक किये जाने को बिहार महिला समाज की बड़ी उपलब्धि मानती हैं। यकीनन इसमें अन्य संगठनों का भी योगदान रहा लेकिन बिहार महिला समाज ने इस पर लंबी लड़ाई लड़ी।

राज्य के प्रतिष्ठित कॉलेज ऑफ कॉमर्स, साइंस एंड आर्ट्स के इतिहास विभाग से सेवानिवृत्त प्रोफेसर सुशीला सहाय वर्तमान में बिहार महिला समाज की अध्यक्ष एवं भारतीय महिला फेडरेशन की उपाध्यक्ष हैं। वे मानती हैं कि आज के दौर में आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी स्वतः स्फूर्त नहीं रही। सशक्त महिला आंदोलन कमजोर पड़ गए हैं। देश में औरतों के हित में कई कानून बनाए गए हैं लेकिन उन्हें लागू करने के लिए इच्छा शक्ति की कमी है। सुशीला जी स्पष्ट तौर पर कहती हैं कि अगर विरोध मजबूत होगा तो सफलता मिलेगी ही। इसके लिए हमें जुटकर प्रयास करना होगा और युवा पीढ़ी को सड़कों पर उतरना होगा चाहे वे लड़कियां हों या लड़के।

शरद कुमारी : राज्य में महिलाओं की लड़ाई लड़ने वालों में शरद कुमारी का नाम जाना–पहचाना है। बिहार महिला समाज से जुड़ीं शरद जी ने महिलाओं के हक की लड़ाई के लिए खुद को समर्पित कर दिया है। वे बताती हैं कि राज्य में शिक्षा को लेकर जागरूकता फैलाने में बिहार महिला समाज की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। लड़कियों को स्कूल भेजने के लिए अभिभावकों को प्रे. रित करने के साथ–साथ प्रौढ शिक्षा को बढ़ावा देने में भी बिहार महिला समाज का बड़ा योगदान रहा है। घरेलू हिंसा, बलात्कार तथा जातीय हिंसा जैसे मामलों में जहां समाज मजबूत स्तंभ बनकर उभरा तो स्वयं वे पीड़िताओं के संघर्ष की साथी बनीं। चम्पा विश्वास मामला, दीपा मुर्मू कांड और जातीय नरसंहार के दौरान हिंसा और बलात्कार की शिक. ार बनी महिलाओं के लिए बिहार महिला समाज सदैव छतरी की तरह काम करता रहा। शरद कुमारी की पारिवारिक पृष्ठभूमि ने उनमें बचपन से ही जुझारूपन भर दिया था। स्वाधीनता सेनानी दादा और वामपंथी पिता की सीखों ने उन्हें अपनी उम्र के अन्य बच्चों की तुलना में बहुत पहले ही औरतों की समस्याओं के प्रति संवेदनशील बना दिया था। यही वजह रही कि मैट्रिक के बाद से ही वे महिला आंदोलनों का हिस्सा बनने लगी थीं। उन्हें याद है कि जब वे कॉलेज में थीं तो राज्य में हुए एक बलात्कार कांड के बाद उन्होंने अपनी दोस्तों से सड़क पर निकलने का आह्वान किया था लेकिन लड़कियों ने यह कह कर पल्ला झाड़ लिया कि ये सब घटनाएं उनके साथ नहीं होने वाली फिर वे क्यों करें विरोध प्रदर्शन। उस घटना ने उन्हें और भी अधिक उग्र बना दिया। 1986 में वे बिहार महिला समाज से जुड़ीं और कालांतर में इसकी महासचिव भी रहीं। शरद जी कहती हैं कि आज के युवा पढ़े–लिखे जरूर हैं लेकिन उनमें जागरूकता का अभाव है। इसलिए जरूरी है कि स्कूलों–कॉलेजों में नारी अधिकारों तथा मानवाधिकारों के बारे में बताया जाय। न केवल लड़कियों को बल्कि लड़कों को भी इन आंदोलनों से जोड़ा जाय क्योंकि उनका मानना है कि अगर हर पिता अपनी बेटी का भला चाह ले तो दुनिया में कोई बेटी असुरक्षित नहीं रहेगी।

दावा अपनी जमीन का

निदा किरमानी

1980 का शाह बानो मामला देश में मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों के संघर्ष के लिए मील का पत्थर साबित हुआ। उस समय कुछ मुसलमान औरतों ने वास्तव में अपने हक की आवाज उठाई जो किसी न किसी तरह धार्मिक नेताओं, राजनेताओं या तथाकथित धर्मनिरपेक्ष महिला समूहों के दमन की शिकार थीं। '80 के दशक के बाद से देश में मुस्लिम महिलाओं के कई समूहों का उदय हुआ लेकिन हम यहां दो महत्वपूर्ण समूहों मुस्लिम वीमेंस राइट्स नेटवर्क (एमडब्ल्यूआरएन) तथा भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन (बीएमएमए) के बारे में बात करेंगे। इन दोनों संगठनों के सिद्धान्त अलग हैं लेकिन दोनों का मकसद एक ही है, मुस्लिम औरतों पर धार्मिक नेताओं और संस्थाओं द्वारा थोपे गए कानूनों का विरोध। इन दोनों संगठनों ने मुख्यधारा के आंदोलनों के लिए समीक्षक की भूमिका निभाई है, चाहे उनके साथ रहकर या अलग होकर। इन्होंने सत्ता और शक्ति के पुनर्वितरण के लिए आवाज उठाई जो मुसलमान औरतों की स्थिति को बेहतर बना सके।

परिचय

9/11 हमले के बाद से मुस्लिम औरतों के अधिकारों के बारे में मीडिया, नेताओं और अन्य संगठनों ने कई बातें कीं। एक निर्मित श्रेणी के रूप में इन्हें हर जगह मोहरे के तौर पर इस्तेमाल किया जाता रहा है। हालांकि इनकी आवाज को समय–समय पर कई तरह से उठाया गया है, कई बार व्यक्तिगत रूप से तो कई बार समूह द्वारा। भारत में महिला आंदोलनों को '70 के दशक से चलाए जा रहे आंदोलनों के तौर पर जाना जाता है जो मुख्य रूप से औरतों पर हिंसा के विरुद्ध, रोजगार और उनकी राजनीतिक भागीदारी के लिए किये जाते रहे हैं। कई बार औरतें अपने उपर पाबंदी लगाने वाले धार्मिक समूहों के खिलाफ भी एकजुट हुई हैं जैसा कि देश ने शाह बानो के मामले में देखा था। 1978 में 72 वर्ष की शाह बानो ने अपने पूर्व पति से हर्जाने की रकम के लिए अदालत में गुहार लगाई थी। मध्य प्रदेश हाई कोर्ट ने बानो के पति को उसे मामूली रकम हर्जाने के तौर पर चुकाने का आदेश दिया। हालांकि उसके पति को वह भी मंजूर नहीं था और उसने सुप्रीम कोर्ट में इस आदेश को यह कह कर चुनौती दी कि हाई कोर्ट का आदेश मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के आदेश का उल्लंघन है। सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले पर गंभीर रुख अपनाते हुए आदेश दिया कि शाह बानो न केवल अपराध प्रक्रिया संहिता के तहत हर्जाने की हकदार है बल्कि उन्हें मुस्लिम शरीयत कानून के तहत भी मेंटेनेंस दिया जाना चाहिए। उच्चतम न्यायालय का यह आदेश देश में मुस्लिम महिलाओं के लिए बड़ा परिवर्तक साबित हुआ। उस केस ने अपने हक की बात करने वाली औरत की तकलीफों को जगजाहिर कर दिया। देश के शहरी हिस्सों में मुस्लिम महिलाओं के संगठन '90 के दशक तक उभरने लगे थे। अच्छी बात ये है कि संख्या में कम होने के बाद भी उनकी आवाज बड़े स्तर तक पहुंचती है। हाल के कुछ मामलों जैसे 2004 के गुड़िया और 2005 के इमराना के मामलों में इन संगठनों की सक्रियता देखी गई।

मुस्लिम महिलाओं के संगठन तथा इस्लाम के साथ उनके संबंध

शाह बानो केस के बाद मुस्लिम वीमेन्स प्रोटेक्शन एक्ट, 1986 ने एक बार फिर तलाक और हर्जाने के मामले में मुस्लिम पर्सनल कानून की शक्ति को बढ़ा दिया। इसे महिला संगठनों ने अपनी हार के रूप में देखा। हालांकि विचारकों का मानना है कि कई बार आंदोलनों के परिणाम तुरंत नहीं आकर देर से आते हैं और इसका सबसे बड़ा प्रमाण समाज में लोकतंत्र का स्तर बढ़ना है। आवाज–ए–निशां और वीमेन्स रिसर्च एक्शन ग्रुप जैसे समूहों का अस्तित्व में आना 80 और 90 के दशक में हुए मुस्लिम महिला आंदोलनों के परिणाम माने जा सकते हैं। मुस्लिम वीमेन्स राइट्स नेटवर्क महिला समूहों का एक बिखरा हुआ नेटवर्क है जिसमें से सभी तो नहीं पर कई का नेतृत्व मुस्लिम महिलाएं कर रही हैं। यह नेटवर्क मुस्लिम पर्सनल लॉ से जुड़े मुद्दों पर काम करता है जिसमें तीन तलाक पर रोक लगाने और मुस्लिम औरतों के विवाह से जुड़े अधिकारों की वकालत करना शामिल है। हालांकि मुस्लिम औरतों के लिए खड़े ये संगठन पूरी तरह धार्मिकता से बंधे हुए भी नहीं हैं और इनका मकसद सभी औरतों के अधिकारों की रक्षा करना है। इसी तरह भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन भी विवाह से जुड़े अधिकारों के लिए संघर्षरत है लेकिन उसके अन्य मुख्य कामों में मुसलमानों में जातिगत वैमनस्यता को दूर कर लोकतंत्र को मजबूत करना है। उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात में इसके 10 हजार से ज्यादा कार्यकर्ता सक्रिय हैं।

(लेखिका 'इस्लामिक रिलीफ एंड दि रिलीजन्स' तथा बर्मिंघम यूनिवर्सिटी के साथ रिसर्च एसोसिएट के तौर पर काम कर रही हैं। यह आलेख 'जर्नल ऑफ इंटरनेशनल वीमेंस स्टडीज' में प्रकाशित उनके शोध कार्य का एक अंश है।)

दलित महिला समिति सम्मान की लड़ाई

दलित महिला समिति की जड़ें नारीवादी आंदोलनों में छिपी हैं। हालांकि दलित महिलाओं को खुद अपने ही आंदोलन का नेतृत्व करने में कई वर्ष लग गए। '90 के दशक की शुरुआत तक इनके लिए घर से बाहर निकलना और खुद की दक्षता को साबित करना भी किसी जंग से कम नहीं था।

स्वाधीनता संघर्ष के दिनों में महात्मा गांधी ने छुआछूत को समाप्त करने का आह्वान लोगों से किया था। उन्होंने तब तक अछूत कहे जाने वालों को 'हरिजन' नाम देकर उनके प्रति लोगों में सम्मान पैदा करने की को. शिश की थी। देश भर में आज भी अम्बेदकर की पूजा की जाती है जिन्होंने इन दमित और कुचले हुए तबके के उत्थान के लिए और उन्हें मुख्यधारा में लाने के लिए उल्लेखनीय काम किया था। समाज में उनकी पीड़ा देखकर और उनके प्रति लोगों के रवैये से दुखी होकर उन्होंने इस तबके के सैकड़ों लोगों के साथ बौद्ध धर्म अपना लिया था। आजादी के बाद इन्हें 'अनुसूचित जाति' का नाम दिया गया और संविधान में इनके लिए कई प्रावधान किये गये। '60 और '70 के दशक में इन पिछड़े और दमित वर्ग के समर्थन में कई जनांदोलन चलाए गए और इन्हें 'दलित' की संज्ञा दी गई। अर्थात् वे लोग जो टूटे हुए हैं और जिन्हें दबाया जाता रहा है। यहां यह जानना रोचक है कि दलित शब्द का इस्तेमाल न केवल दबे–कुचले और पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए किया जाता है बल्कि महिलाओं को भी इसी के तहत शामिल किया जाता है। ऐसे में दलित आंदोलन का अर्थ उच्च जाति की महिलाओं के आंदोलन के संदर्भ में भी लगाया जाता है। यह आंदोलन अलग–अलग समय में देश के विभिन्न हिस्सों में चलाया जाता रहा है। इसकी जड़ें दक्षिण और पश्चिम भारत में छिपी हैं और इन्हें जाति विरोधी लेखन तथा वोटों की राजनीति के जरिये चलाया जाता रहा है।

जाह्नवी अंधारिया

वर्ष 1995 में गठित नेशनल फेडरेशन ऑफ दलित वीमेन ने महिला आंदोलनों को जाति की समस्याओं को गंभीरता से लेने के लिए बाध्य किया। दलित स्त्रीवादियों ने दलित महिलाओं के दमन को तीन स्तरों पर दिखाया :

1. उच्च जातियों द्वारा दलितों का दमन
2. जमीनदारों द्वारा कृषि श्रमिकों का शोषण, तथा
3. पितृसत्ता के कारण महिलाओं का अपनी ही जाति के पुरुषों द्वारा दमन

दलित महिला समिति का गठन

उत्तर प्रदेश में दलित महिलाओं के हित में चलाए जा रहे आंदोलन को दिशा देती है दलित महिला समिति। यह समिति एक स्वयंसेवी संगठन 'वनांगना' के समर्थन से अपना काम करती है जो राज्य में महिला समाख्या के सहयोग से खड़ी है। महिला समाख्या कार्यक्रम को केन्द्र सरकार ने 1980 के अंतिम वर्षों में औरतों को शिक्षा के जरिये सशक्त बनाने के लिए लागू किया था। राज्य के बांदा जिले में महिला समाख्या ने दलित महिलाओं को तकनीकी कामों में दक्ष बनाने की उपलब्धि अपने नाम की है। इन औरतों को हैंड पंप की मरम्मत करने का प्रशिक्षण दिया गया था। ज्यादातर इलाकों में पानी की आपूर्ति के मुख्य साधन हैंडपंप और बोरवेल ही होते हैं। 1993 में दलित महिलाओं को और सक्षम बनाने के लिए वनांगना नाम की एक अलग इकाई का गठन किया गया। कुछ वर्षों में ही वनांगना ने चित्रकूट और बांदा के ग्रामीण इलाकों में अपनी स्थिति मजबूत बना ली। उन क्षेत्रों में ज्यादातर हैंडपंप मैकेनिक दलित या आदिवासी महिलाएं थीं इसलिए जब वे उंची जाति वाले इलाकों में हैंडपंप मरम्मति के लिए जाती थीं तो लोगों में तनाव पैदा होना लाजिमी था। लेकिन चूंकि वे हमेशा समूह में चलती थीं और अपने काम में दक्ष थीं इसलिए जल्दी ही उन्होंने इस परेशानी को भी काबू में कर लिया और दलितों के लिए समाज में बने भ्रम को तोड़ने में कामयाब रहीं। वनांगना की संस्थापकों में से एक माधवी बताती हैं कि उनका जोर इस बात पर था कि कैसे ये महिलाएं तकनीकी दक्षता के जरिये अपनी अलग पहचान बना पाती हैं और इसके माध्यम से दूसरी समस्याओं को दूर करने में सक्षम हो पाती हैं।

दलित महिला समिति की जड़ें नारीवादी आंदोलनों में छिपी हैं। हालांकि दलित महिलाओं को खुद अपने ही आंदोलन का नेतृत्व करने में कई वर्ष लग गए। '90 के दशक की शुरुआत तक इनके लिए घर से बाहर निकलना और खुद की दक्षता को साबित करना भी किसी जंग से कम नहीं था। अनुभव पाते ही उन्होंने अपने लिए एक अलग महिला आंदोलन की जरूरत महसूस की जो सिर्फ दलित औरतों की समस्याओं पर केन्द्रित हो। इस तरह 2003 में औपचारिक रूप से दलित महिला समिति का गठन हुआ। बुंदेलखंड का इलाका, जहां दलित महिला समिति मुख्य रूप से सक्रिय है, घने जंगलों से भरा है और इसे डकैतों के लिए सबसे सुरक्षित स्थान के तौर पर जाना जाता है। ऐसे में यहां के दलित समुदाय को न केवल उच्च जाति द्वारा दबाया जाता था बल्कि उन्हें राज्य और डकैतों की हिंसा का भी शिकार होना पड़ता था। दलित महिला समिति 1500 से अधिक महिलाओं का संगठन है जो चित्रकूट के सात प्रभागों में बंटा है। महिलाएं इस संगठन की मुख्य सदस्य हैं लेकिन सहायक के तौर पर पुरुषों को भी शामिल किया जाता है। चूंकि संगठन की ज्यादातर महिलाएं अशिक्षित हैं इसलिए वे किसी शिक्षित पुरुष की मदद भी लेती हैं।

वनांगना ने जैसे–जैसे दलित औरतों को प्रशिक्षण देना शुरू किया उन्होंने पितृसत्ता को चुनौती देना आरंभ कर दिया। महिलाओं ने अपने अनुभवों के द्वारा हिंसा के मामलों को ज्यादा समझदारी से सुलझाना सीख लिया था। इन सबके बावजूद वनांगना जिस एक मोर्चे पर लड़ रही थी वो था न्याय तक औरतों की पहुंच। वर्ष 2002 में गुजरात में फैले दंगे के दौरान जब मुस्लिम महिलाओं को निशाना बनाया जा रहा था तब औरतों के खिलाफ काम कर रहे धार्मिक चेहरे भी सामने आ गए। ये जाहिर हो गया कि कई अन्य बाधाओं के साथ–साथ धर्म भी औरतों की राह में बड़ी बाधा है। वनांगना ने इस मुद्दे पर एक खुली बैठक की जिसमें 300 दलित औरतों ने हिस्सा लिया। इस बैठक में हिन्दूवाद और हिन्दू तथा मुसलमानों के संबंधों पर खुली बहस हुई। इसी समय एक दलित महिला नेता बहुजन समाजवादी पार्टी के माध्यम से अपनी स्थिति मजबूत करने में लगी थी। इस पार्टी ने दलितों के उत्थान को अपना मुख्य एजेंडा बनाया और इसी समुदाय से अपने नेताओं का भी चयन किया। उच्च जाति के राजनीतिक दलों को उक्त पार्टी और महिला नेता का इस तरह आगे बढ़ना रास नहीं आया। उसी दौरान दलित नेता हरीशचंद्र की हत्या कर दी गई और दलितों के कई मकान जला दिये गये। जब वनांगना से जुड़ी औरतों को दलितों के दमन के बारे में पता चला तो उन्होंने एकजुटता दिखाई और उंची जाति के दमनकारी लोगों के खिलाफ न केवल पुलिस में शिकायत दर्ज करवाई बल्कि आवासहीन हो चुके दलित परिवारों को अपने गांव वापस लाने में भी कामयाब रहीं। वनांगना और उसकी महिला सदस्यों ने दोषियों को गिरफ्तार करवाने में बड़ी भूमिका निभाई। लोगों को यह कहने पर मजबूर होना पड़ा कि जो काम मारे गए नेता की पार्टी नहीं कर पाई वो इन महिलाओं ने कर दिखाया।

समय के साथ–साथ वनांगना ने अपने संगठन के स्वरूप और कार्यों में काफी बदलाव किये जो मुख्य रूप से दलित महिलाओं के हित में थे। पदयात्रा और गांवों में बैठक की जाने लगी जिनमें दलित औरतों की पहचान और सम्मान को लेकर चर्चा की जाती थी। धीरे–धीरे दलित महिलाओं के लिए एक पृथक और अधिक केन्द्रित संगठन की बात उठने

लगी जिसने कालांतर में दलित महिला समिति के निर्माण का मार्ग प्रशस्त कर दिया। दलित महिला समिति के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :

1. अपने इलाके में जाति समीकरणों को बदलना
2. स्थानीय महिलाओं में नेतृत्व क्षमता का विकास करना
3. महिला और पुरुषों दोनों के खिलाफ हिंसा का विरोध करना
4. चुनावों के दौरान अपनी पारी के लिए उंची जाति के साथ समझौता करने में सक्षम बनाना
5. सभी दलितों को सरकारी योजनाओं का लाभ सुनिश्चित करना।

असल में 'महिला आंदोलन' को लेकर हमारा दृष्टिकोण बहुत सिकुड़ा हुआ है जो केवल बहुत सारी महिलाओं द्वारा धरना देने या मार्च करने तक ही सीमित है, जबकि वास्तव में नारीवाद का अर्थ कई मुद्दों पर एक साथ काम करने से जुड़ा है। पितृसत्ता अपने आपको कई क्षेत्रों में जाहिर करती है और इसलिए हर जगह व्याप्त है। दलित महिला समिति आज कई क्षेत्रों में एक साथ काम कर रही है। वनांगना के साथ मिलकर इसने यर्थाथ में ही दलित आंदोलन को आकार दिया है। न्याय, समानता और सम्मान भले ही दूर दिखायं देते हैं लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि देश के सुदूर गांवों की 1600 दलित महिलाएं मिलकर आंदोलन को शक्ल दे रही हैं।

(लेखिका महिला मुद्दों पर काम करती रही हैं तथा वर्तमान में 'आनंदी' से जुड़ी हैं। उपरोक्त अध्ययन 'आनंदी' के सहयोग से एसोसिएशन फॉर वीमेन्स राइट्स इन डेवलपमेंट के लिए किया गया है)

आंदोलनों का बदला स्वरूप

धार्मिक स्थलों में प्रवेश के लिए आंदोलन

नवम्बर, 2015 से चर्चा में रहीं तृप्ति देसाई ने देश के मंदिरों और हाजी अली दरगाह में महिलाओं के प्रवेश के लिए आंदोलन चलाया और उसमें वे सफल भी रहीं। पूरा मामला नवम्बर में उस समय सामने आया जब शनि शिंगणापुर में एक लड़की ने तेल चढ़ाया। जब मंदिर प्रबंधन तथा पुजारियों को इस बात का पता लगा तो उन्होंने न केवल मंदिर में तैनात सुरक्षागार्डों को निलंबित कर दिया बल्कि शनि की प्रतिमा का शुद्धिकरण भी कराया गया। इस घटना ने पूरे देश की महिलाओं को उद्वेलित कर दिया जिनका नेतृत्व किया भूमाता ब्रिगेड की तृप्ति देसाई ने। देसाई ने अन्य महिलाओं के साथ मंदिर में प्रवेश की मांग को लेकर उग्र प्रदर्शन किया। महिलाओं के तेवर और देश भर से उन्हें मिल रहे समर्थन को देखते हुए राज्य सरकार और फिर अदालत ने भी संविधान में मिले अधिकार के तहत औरतों को मंदिर में प्रवेश करने का अधिकार प्रदान किया। 8 अप्रैल, 2016 को महाराष्ट्र में मनाए जाने वाले गुड़ी पर्व के दिन देसाई ने अपनी महिला समर्थकों के साथ शनि शिंगणापुर मंदिर में प्रवेश कर सदियों पुरानी पुरुषवादी सोच पर आधारित मान्यता को तोड़ दिया। मंदिरों में विशेषकर दक्षिण भारत के मंदिरों में महिलाओं के प्रवेश को लेकर वर्षों से कट्टरपंथी सोच अपनाई जाती रही है और उन पर प्रति. बंध लगाए जाते रहे हैं। तृप्ति देसाई ने न केवल शनि शिंगणापुर में प्रवेश किया बल्कि उसके बाद कोल्हापुर के महालक्ष्मी मंदिर में भी प्रवेश की कोशिश की। मंदिर प्रबंधन ने औरतों को इसकी इजाजत दे दी लेकिन पुजारियों ने जबर्दस्त विरोध किया और तृप्ति व अन्य पर हमला कर दिया। पांच पुजारियों को हमला करने के आरोप में गिरफ़्तार किया गया। इसी तरह तृप्ति नासिक के त्र्यंबकेश्वर मंदिर के गर्भगृह में भी गई जहां उन्हें पूर्ण सुरक्षा दी गई। हालांकि उन्हें भी पुरुषों की तरह ही भीगे हुए कपड़ों में गर्भगृह में जाने की इजाजत दे दी गई। अप्रैल, 2016 में उन्होंने मुंबई के हाजी अली दरगाह में भी प्रवेश की कोशिश की लेकिन उग्र विरोध और हत्या की धमकी दिये जाने के कारण वे पहली बार सफल नहीं हो पाईं। मई में दोबारा कोशिश करने पर वे सफल हो गईं लेकिन उन्हें दरगाह के भीतरी कक्ष में जाने की अनुम. ति नहीं मिल पाई। देसाई के आंदोलन ने एक मौन पड़े क्षेत्र में महिलाओं की उपस्थिति को महत्वपूर्ण बना दिया।

गुलाबी गैंग ने दिखाई हिम्मत

घरेलू हिंसा के खिलाफ बुंदेलखंड की औरतों ने जो हौसला दिखाया वो काबिले तारीफ है। शराब के नशे में धुत पतियों की पिटाई से आजिज औरतों ने अपना समूह बनाया और न केवल अपनी जिंदगी को आसान बनाया बल्कि भ्रष्टाचार और काले धंधे वालों की भी खबर ली। अपने नाम के कारण चर्चा में आए इस समूह को गुलाबी गैंग के नाम से जाना जाता है। इसकी स्थापना दाता सतबोध सेन ने की जबकि सुमन सिंह चौहान इसकी प्रमुख नेता रहीं। वर्ष 2002 में जब एक दिन सुमन अपने घर लौट रही थीं तो उन्हें पता चला कि उनकी एक सहेली को पति ने प्रताड़ित किया है। जब वे सहेली को बचाने गईं तो उसके पति के दोस्तों ने उन्हें अपमानित कर वापस भेज दिया। पुलिस ने भी उनकी कोई मदद नहीं की। इस घटना से परेशान सुमन ने पड़ोसियों और मोहल्ले वालों को इकट्ठा किया और दोबारा सहेली के घर जाकर उसके पति को पूरे समाज के सामने ला खड़ा किया। इसके बाद उन्होंने गुलाबी गैंग के गठन का निर्णय लिया। इसी तरह 2007 में सरकारी राशन की दुकान से कालाबाजारी कर अनाज को खुले बाजार में बेचे जाने की सूचना मिलने पर सुमन और उनकी गुलाबी गैंग ने साक्ष्य इकट्ठा कर पुलिस और स्थानीय प्रशासन को सौंपा लेकिन उनकी शिकायत नहीं सुनी गई। बार–बार की अनदेखी के बाद भी गुलाबी गैंग अपना काम करती रही और जहां भी उन्हें अन्याय या अत्याचार दिखाई दिया वहां उन्होंने अपने गैंग की महिलाओं के साथ धावा बोल दिया। गुलाबी गैंग के बढ़ते प्रभाव का असर वहां की राजनीति में भी दिखाई पड़ने लगा है। बताया जाता है कि गुलाबी गैंग के सदस्यों की संख्या 4 लाख तक पहुंच चुकी है। इसमें 18 वर्ष से लेकर 60 वर्ष तक की महिलाएं शामिल हैं। इस गैंग को अपने बहादुरी के कामों के कारण कई अवार्ड भी दिये जा चुके हैं और पूरे देश ने इनके साहस को मान्यता दी है। इस गैंग की सदस्य गुलाबी रंग की साड़ी पहनती हैं और इनके हाथों में हमेशा लाठी होती है जिसे वे जरूरत पड़ने पर इस्तेमाल करती हैं। इसकी ज्यादातर सदस्य गरीब और पिछड़े वर्ग की औरतें होती हैं। अब गैंग न केवल औरतों की समस्याओं को सुलझाती हैं बल्कि मर्दों पर होने वाले अत्याचार तथा मानवाधिकार के मामलों को भी सामने लाकर उनके समाधान का प्रयास करती हैं।

दुनिया की सबसे लंबी भूख हड़ताल

पूर्वोत्तर की 'आयरन लेडी' के नाम से मशहूर इरोम चानू शर्मिला का नाम सिर्फ पूर्वोत्तर के राज्यों में ही नहीं बल्कि देश के हर हिस्से में बखूबी जाना जाता है। दुनिया ने भी उन्हें मानवाधिकारों के लिए सबसे लंबी भूख हड़ताल करने वाली जुझारू महिला के तौर पर जाना है। मणिपुर और पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों में लागू आर्म्ड फोर्सेस स्पेशल पावर एक्ट, 1958 के खिलाफ शर्मिला ने 2 नवम्बर, 2000 को भूख हड़ताल शुरू की थी जो 16 साल बाद 9 अगस्त, 2016 को समाप्त हुई। यह

एक्ट पूर्वोत्तर के राज्यों में उपद्रवी हिंसा की रोकथाम के लिए लागू किया गया था जिसके तहत सेना को किसी भी नागरिक के यहां छापेमारी करने और बिना वारंट के उन्हें गिरफ्तार करने की छूट दी गई थी। मणिपुर में राजनीतिक हिंसा के दौरान वर्ष 2005 से 2015 तक करीब 5 हजार लोग मारे जा चुके हैं। वर्ष 2000 में इंफाल घाटी के मलोम में बस का इंतजार कर रहे दस लोगों को असम राइफल्स ने गोलियों से उड़ा दिया था। मारे गए लोगों में 62 वर्ष की एक महिला के साथ 18 वर्षीय सिनम चंद्रमणि भी थे जिन्हें 1988 में राष्ट्रीय वीरता पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। सेना द्वारा किये गय उस नरसंहार के विरोध में शर्मिला ने झंडा बुलंद किया था। वे भूख हड़ताल पर चली गईं और उन्होंने विवादास्पद एक्ट 'एएफएसपीए' को हटाने की मांग रखी। उन्होंने प्रण लिया कि जब तक ये कानून हटाया नहीं जाता वे न तो कुछ खाएंगी, न पिएंगी, न बाल संवारेंगी और न ही शीशे में अपना चेहरा देखेंगी।

पेड़ों के लिए चिपको आंदोलन

भारत में औरतों ने पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों का महत्व पहले ही समझ लिया था और इसलिए उसकी रक्षा के लिए अग्रसर रहीं। ऐसा ही एक आंदोलन जो उन्होंने चलाया और कामयाब भी रहीं, वह था चिपको आंदोलन। जंगल और पेड़ों की सुरक्षा के उद्देश्य से इस आंदोलन की शुरुआत 1973 में की गई थी। पेड़ों को बचाने के लिए अहिंसा पर आधारित इस आंदोलन ने जल्दी ही पूरी दुनिया में ख्याति पा ली। 1987 में इसके कार्यों के लिए इसे राइट लीवलीहुड अवार्ड से सम्मानित किया गया। चिपको आंदोलन की खासियत इसका पर्यावरण से जुड़ा होना तो है ही, साथ ही इसकी सबसे बड़ी खूबी इसमें महिलाओं की भागीदारी है। गौरा देवी, बचनी देवी, सुदेशा देवी और चंडी प्रसाद भट्ट जैसे लोगों ने इस आंदोलन को गंभीरता से आगे बढ़ाया। इस आंदोलन ने विकास के उस मापदंड को आइना दिखाया जो शहरीकरण की दौड़ में जंगलों और आदिवासी क्षेत्रों की उपेक्षा करता जा रहा था। ग्रामीण और आदिवासी इलाकों में पानी, ईंधन और चारागाह की कमी के कारण औरतों को अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता था। प्राकृतिक संसाधनों के लगातार दोहन से पर्यावरणीय संतुलन भी खतरे में था और मवेशियों के व्यवहार तथा उत्पादों में तेजी से बदलाव आने लगे थे। ऐसे में सबसे पहले 20वीं सदी के आरंभ में राजस्थान में अमृता देवी ने 84 लोगों के साथ मिलकर जंगल को बचाने की मुहिम शुरू की थी। बाद के दशकों में इस मुहिम से महिलाएं बड़ी संख्या में जुड़ती चली गईं।

ग्रीन वेल्ट मूवमेंट

भारत में जहां एक ओर चिपको और नर्मदा बचाओ आंदोलन चलाए जा रहे थे तो वहीं दुनिया भर में पर्यावरण की रक्षा के लिए संगठनों और लोगों ने आंदोलन शुरू कर रखा था। नोबेल अवार्ड विजेता पर्यावरणविद वांगारी माथाई ने भी जून, 1977 में केन्या में अपने आंदोलन को साकार रूप दिया जिसे ग्रीन बेल्ट मूवमेंट के नाम से जाना जाता है। माथाई ने अपना आंदोलन तेजी से खत्म हो रहे जंगलों के संरक्षण के लिए और इसके जरिये ग्रामीण और आदिवासी औरतों के सशक्तीकरण के लिए चलाया था। इसके तहत केन्या में बड़ी संख्या में पेड़ लगाए गए।

सेवा भारत

स्वरोजगार महिला एसोसिएशन यानी 'सेवा' महिलाओं का एक ऐसा समूह है जो महिला श्रमिकों द्वारा 1972 में बनाया गया था। इन महिलाओं को एक मंच पर लाने का क्रांतिकारी काम किया था श्रीमती इला भट्ट ने। इसकी शुरुआत कपड़ा मजदूरों के संघ से हुई थी और आज ये अनौपचारिक क्षेत्र की महिलाओं का सबसे बड़ा ट्रेड यूनियन है। यह गरीब कामगार औरतों को अपना समूह बनाने में उनका सहयोग करता है। वर्ष 2013 के अंत तक देश के 13 राज्यों में सेवा के 1.9 मिलियन सदस्य थे।

चर्चित

महिला संगठनों की भूमिका

हैदराबाद और मथुरा के बलात्कार कांड

महिलाओं से हुए बलात्कार के मामलों ने कई बार देश को आंदोलनों की राह पर चलाया और उन्हें दिशा दी महिला संगठनों ने। 1978 में हैदराबाद में एक ऐसा ही मामला सामने आया जब गरीब महिला रमीजा बी के साथ दुष्कर्म किया गया। रमीजा और उसके पति जब थाने गए तो वहां रमीजा को 'वेश्या' करार दिया गया और पुलिस वालों ने फिर उसके साथ बलात्कार किया। रमीजा के पति के विरोध करने पर उसे इतना पीटा गया कि उसकी मौत हो गई। इसी तरह 1986 में गुजरात के तीन संगठनों सहियार, चिंगारी और लोक अधिकार संघ ने भरूच की आदिवासी महिला गुंटाबेन के साथ पुलिस वालों द्वारा बलात्कार किये जाने के मामले में सुप्रीम कोर्ट में संयुक्त याचिका दायर की। मामले की जांच जस्टिस पी.एन. भगवती ने की। इस दौरान 584 लोगों से पूछताछ की गई और अंत में नौ लोगों को दोषी पाया गया।

देखा जाय तो 1980 में मथुरा रेप केस में आए सुप्रीम कोर्ट के फैसले का प्रभाव बाद के कई बलात्कार मामलों में देखने को मिला। एक नाटकीय फैसले में हाई कोर्ट के फैसले को पलटते हुए सुप्रीम कोर्ट ने बलात्कार के सभी दोषियों को बरी कर दिया था। प्रतिक्रियास्वरूप चार प्रमुख वकीलों ने फैसले का विरोध करते हुए देश के मुख्य न्यायाधीश को एक खुला पत्र लिखा। इस पत्र के सामने आते ही फैसले से नाराज महिला संगठनों ने पूरे देश में हल्ला बोल दिया और विरोध प्रदर्शन किये जाने लगे। शुरुआत मुंबई से हुई जो धीरे–धीरे पुणे, दिल्ली, हैदराबाद, बेंगलुरू, अहमदाबाद और नागपुर तक फैल गई।

तरविंदर कौर हत्या मामला

वैसे तो कानूनी रूप से दहेज लेना या देना साठ के दशक में ही अमान्य कर दिया गया था लेकिन ये आज भी अपने मौलिक रूप में ही या कह सकते हैं कि और ज्यादा वीभत्स रूप में समाज में व्याप्त है। हालांकि महिला संगठनों ने इसे लेकर अपना संघर्ष नहीं छोड़ा। सत्तर के दशक में दिल्ली के संगठन महिला दक्षता समिति और स्त्री संघर्ष ने दहेज हत्या के मामलों को उठाने में अग्रणी भूमिका निभाई। 1978 में तरविंदर कौर नाम की एक महिला को ससुराल वालों ने दहेज के लिए मौत के घाट उतार दिया था। इन संगठनों ने तरविंदर के ससुराल के पास जबर्दस्त विरोध प्रदर्शन कर इसे राष्ट्रीय मुद्दा बना दिया था।

शाहबानो मामला

मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों को लेकर जब भी बात की जाती है तो शाहबानो मामले का जिक्र आता ही है। 1978 में बुजुर्ग महिला शाहबानो ने अपने पूर्व पति पर मेंटेनेंस के लिए अदालत में गुहार लगाई थी। मामला सुप्रीम कोर्ट तक पहुंचा जहां कोर्ट ने बानो को न केवल अपराध प्रक्रिया संहिता के तहत हर्जाने की हकदार माना बल्कि कहा कि उन्हें मुस्लिम शरीयत कानून के तहत भी मेंटेनेंस दिया जाना चाहिए। अदालत के इस आदेश पर मुस्लिम धार्मिक नेता उखड़ पड़े और उन्होंने साफ कह दिया कि किसी भी मुस्लिम औरत का मामला केवल मुस्लिम पर्सनल बोर्ड ही सुलझा सकता है और सुप्रीम कोर्ट अथवा किसी अन्य प्राधिकार को पैगम्बर के उपदेशों में दखल देने का अधिकार नहीं है। वे यहां तक ही नहीं रुके और उन्होंने मुस्लिम औरतों को सीपीसी के सेक्शन 125 से बाहर करने की मांग भी रख दी। तत्कालीन केन्द्र सरकार ने भी तुष्टिकरण की नीति के तहत उनकी मांग को मान लिया और इस प्रकार मुस्लिम वुमेन्स मेंटेनेंस ऑफ राइट ऑन डिवोर्स एक्ट, 1986 पास हुआ। इस कानून के पक्ष और विरोध में देश में कई प्रदर्शन हुए।

विशाखा गाइडलाइन

1997 में राजस्थान में हो रहे एक बाल विवाह को रोकने की सजा वहां की महिला एवं बाल विकास कर्मचारी को बलात्कार के रूप में मिली। महिला के साथ गांव के दबंग समुदाय के लोगों ने बार–बार रेप किया लेकिन पुलिस और हाई कोर्ट ने उसके आरोपियों को पकड़ने की बजाय उन्हें खुला छोड़ दिया। इस मामले ने जल्द ही तूल पकड़ लिया जिसके बाद महिला अधिकारों के लिए लड़ रही संस्था विशाखा ने महिला को न्याय दिलाने के लिए सुप्रीम कोर्ट का रुख किया। सुप्रीम कोर्ट ने महिलाओं की शुचिता भंग करने के मामलों पर बेद गंभीरता दिखाई और एक लैंडमार्क जजमेंट पास किया जिसे विशाखा गाइडलाइन के नाम से जाना जाता है। गाइडलाइन में कार्यस्थल पर यौन प्रताड़ना का सख्ती से विरोध कर दोषियों को कानून के घेरे में लाने की को. शिश की गई।

नर्मदा बचाओ आंदोलन

नदियों पर बड़े बांधों के बनने से विस्थापित होने वाले लोगों को न्याय दिलाने और पर्यावरण को होने वाले नुकसान को कम करने के लिए देश ही नहीं पूरी दुनिया में कई स्तर पर आंदोलन चलाए जा रहे हैं। ऐसा ही एक आंदोलन गुजरात की नर्मदा नदी पर बन रहे सरदार सरा. वर बांध के विरोध में मेधा पाटेकर और उनके समर्थकों ने चला रखा है। इस आंदोलन को बड़ी संख्या में आदिवासियों, जनजातियों, किसानों और पर्यावरणविदों का समर्थन प्राप्त है। इस बांध का विरोध मुख्य रूप से नष्ट होने वाले पेड़ों के कारण भी है।

मंजरी

स्त्री के मन की

Sulabh International
Social Service Organisation

COMFED
PRIDE OF BIHAR
Sudha

पावरग्रिड
एक 'नवरत्न' कंपनी

takshila
connect
to the
universe

We Care
I S
INTERNATIONAL SCHOOL

bansal
FOR CLASS : VI, VII, VIII, IX, X, XI & XII, IIT-JEE (MAINS & ADVANCED) & MEDICAL ASPIRANTS
TUTORIALS

THE OFFSETTERS (INDIA) PRIVATE LIMITED
design, pre-press and color offset printing

आप हमें ई–मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई–मेल भी कर सकते हैं। इस विषय में विशेष जानकारी equityasia@gmail.com पर ली जा सकती है। प्रकाशक की अनुमति के बिना पत्रिका में प्रकाशित किसी भी सामग्री का अन्यत्र इस्तेमाल करना कॉपीराइट का उल्लंघन माना जाएगा।

© : इक्विटी फाउंडेशन